वर्ष ४४] * * * [अङ्क ११

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,६५,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष २०२७, नवम्बर १९७०

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य भारतमें ९.००
विदेशमें १२.३५ (१५ शिलिंग)

जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति भारतमें ५० पैसे
विदेशमें ८० पैसे (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर
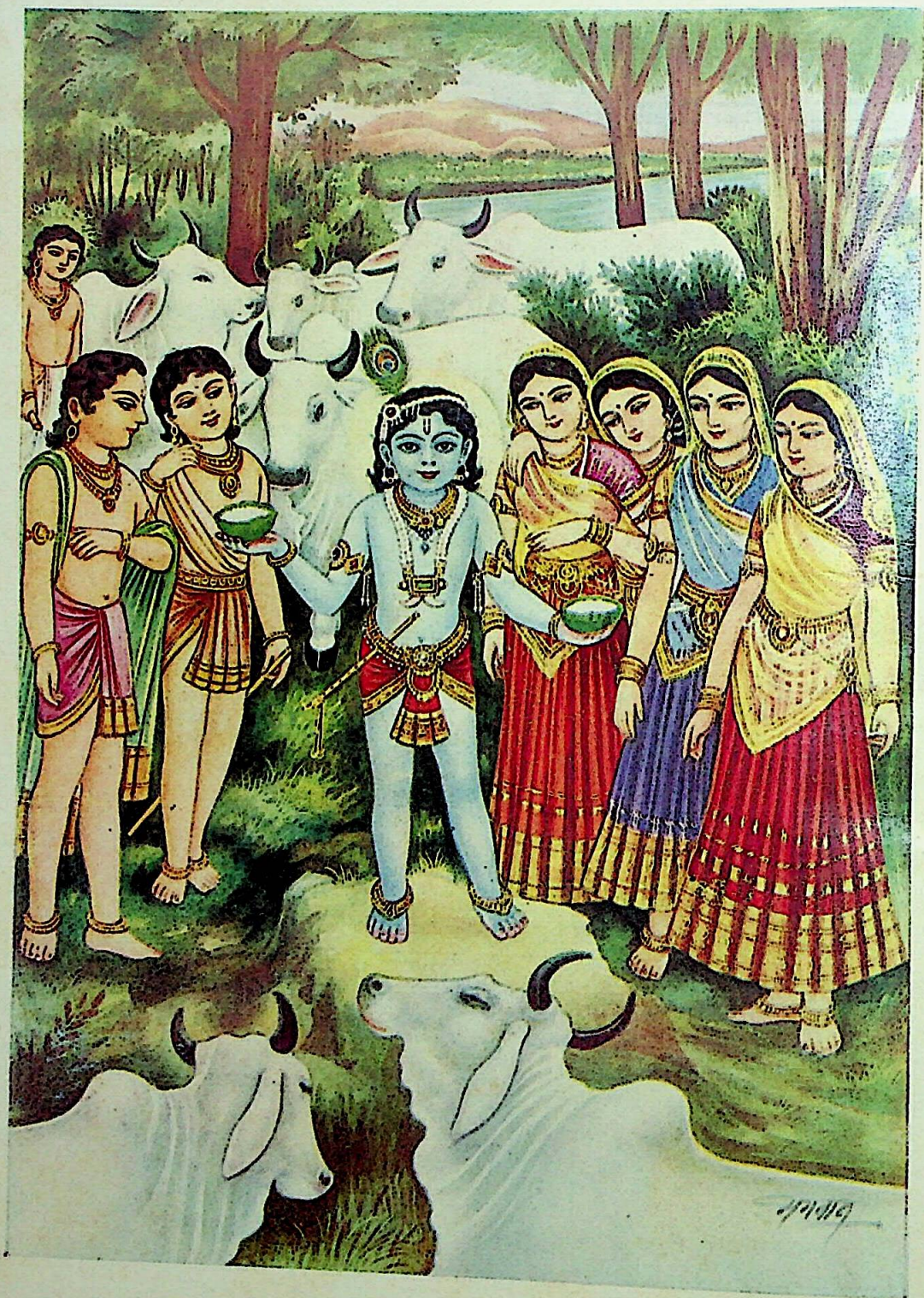
खीर लिये खड़े मोहन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

देवाधिदेव भगवन् कामपाल नमोऽस्तु ते । नमोऽनन्ताय शेषाय साक्षाद् रामाय ते नमः ॥
नमः श्रीकृष्णचन्द्राय परिपूर्णतमाय च । असंख्याण्डाधिपतये गोलोकपतये नमः ॥

वर्ष ४४ } गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, विक्रम संवत् २०२७, नवम्बर १९७० { संख्या ११
पूर्ण संख्या ५२८

खीर लिये खड़े मोहन

वृन्दा-विपिन तपन-तनया-तट शोभित पादप-लता तमाम ।
कटि मुरली, घिर रहे मुग्ध गौ-गोपी-गोपोंसे अभिराम ॥
अलंकार-भूषित तन सुन्दर कंठ हार बघनखा ललाम ।
मोर-मुकुटधर, खीर-पात्र कर लिये खड़े मनमोहन श्याम ॥

याद रक्खो—प्रकृतिजनित सत्त्व-रज-तम—तीनों गुणोंमें और तीनों गुणोंवाले प्राणी, पदार्थ तथा परिस्थितिमें कभी शान्ति नहीं है। इनमें नित्य चञ्चलता है; क्योंकि ये सभी परिवर्तनशील तथा अनित्य हैं—क्षण-क्षणमें बदल रहे हैं, नित्य गतिमान् हैं, फिर इनमें शान्ति कहाँसे आती ? अतएव इनसे शान्तिकी आशा रखना सर्वथा व्यर्थ है।

याद रक्खो—तमोगुण और रजोगुणकी अपेक्षा सत्त्वगुणमें कुछ शान्ति दिखायी देती है; पर सत्त्वगुण भी न तो कभी अकेला रह सकता है और न उसकी वृद्धि ही स्थायी रह सकती है; क्योंकि प्रकृतिका सभी कुछ परिवर्तनशील है। अतएव उससे भी शान्ति नहीं मिल सकती।

याद रक्खो—प्रकृतिके किसी भी प्राणी, किसी भी पदार्थ तथा किसी भी परिस्थितिमें शान्ति नहीं है। उनमें कहीं कुछ जो शान्ति दिखायी देती है, वह उन प्राणी-पदार्थोंमें नहीं है; वह है आत्मामें। किसी काम्य वस्तुके प्राप्त होनेपर एक बार चित्तकी वृत्ति कुछ स्थिर होती है, तब उसमें आत्माकी सहज शान्तिकी छाया आती है। हम उसीको भूलसे उन प्राणी-पदार्थोंसे मिली मान लेते हैं, पर वह शान्ति भी उतनी ही देर ठहरती है, जितनी देरतक दूसरी कामना नहीं उत्पन्न होती। कामना आयी कि शान्ति गयी।

याद रक्खो—किसी भी कामनाकी पूर्तिसे कामना मिटती नहीं, वरं बढ़ती है, वैसे ही जैसे अग्निमें ईंधन तथा घृत पड़नेपर वह और बढ़ जाती है। प्रकृतिकी कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो पूर्ण हो, जितनी विशाल वस्तु होती है, उतनी अधिक उसमें अपूर्णताका बोध होता है, अभाव दिखायी देता है। जहाँ अभाव है, वहीं कामना है और जहाँ कामना है, वहीं अशान्ति है एवं अशान्तिमें सुख कहाँ ? 'अशान्तस्य कुतः सुखम् ।' इसलिये किसी भी सांसारिक स्थितिमें, चाहे वह कितनी ही समुन्नत और धन-जन-ऐश्वर्य तथा पदाधिकार, मान-कीर्तिसे सम्पन्न हो, कभी स्थिर तथा सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती। वरं उसमें अधिक अभावकी अनुभूतिसे चिन्ता तथा कामना, विनाशका भय, उस स्थितिसे ईर्ष्या-द्वेष करनेवालोंसे संघर्ष आदि अनेक नये-नये कारणोंसे अशान्ति और भी बढ़ जाती है। अतएव हमें यदि शान्ति चाहिये तो हम सभी कामनाओं तथा स्पृहाओंका और ममता-अहंताका त्याग करनेके लिये प्रयत्नशील हों। शान्ति-प्राप्तिका एक सरल सुन्दर साधन है—सर्वलोकमहेश्वर, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ भगवान्‌के सौहार्दपर अटल विश्वास।

याद रक्खो—भगवान्‌के सौहार्दपर विश्वास होनेपर यह स्पष्ट अनुभव होगा कि हमारे लिये भगवान्‌ने जो कुछ भी रचा है, जो कुछ भी हमें (जागतिक दृष्टिसे अनुकूल या प्रतिकूल, सुख या दुःख, वाञ्छनीय या अवाञ्छनीय) प्राप्त करानेका विधान है, वह निश्चय ही परम मङ्गलमय है। भगवान् हमारे सुहृद् हैं, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं, अतएव वे निश्चय ही हमारा जिसमें वास्तविक परम कल्याण होगा, वही विधान करेंगे।

याद रक्खो—शान्ति वास्तवमें वही है, जो शाश्वत है—नित्य है। ऐसी शाश्वत शान्ति नित्य—शाश्वत तत्त्वसे ही मिल सकती है। वह नित्य शाश्वत परम तत्त्व हैं—एकमात्र श्रीभगवान्। अतएव जिनको शान्ति चाहिये, वे उसके लिये किसी भी मानव-प्राणीसे, किसी भी पदार्थसे, किसी भी परिस्थितिसे कोई भी आशा न रक्खें। जो स्वयं विक्षुब्ध, चञ्चल और अशान्त है, उससे हमें शान्ति कैसे मिल सकती है ? अतएव शान्तिके लिये—नित्य शाश्वत यथार्थ शान्तिके लिये केवल भगवान्‌से ही आशा रखनी चाहिये एवं भगवान्‌से ही प्रार्थना करनी चाहिये।

'शिव'

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश

[पुराने सत्सङ्गसे]

भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम होनेके चार उपाय

भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम होनेका मुख्य उपाय प्रेम होनेकी इच्छा ही है। जो यह चाहता है कि 'मेरा भगवान्‌के चरणोंमें अनन्य प्रेम हो जाय'—उसका हो जायगा। लोग कहते हैं, पर वास्तवमें चाहते नहीं। इसका पता लोगोंकी क्रियासे लगता है। धनको चाहनेवाले रात-दिन रुपया-रुपया करते मारे-मारे फिरते हैं, उनकी क्रिया और प्रयत्न यह सिद्ध कर देते हैं कि उनका रुपयोंमें प्रेम है। इसी प्रकार हमलोगोंके प्रयत्नकी शिथिलता यह सिद्ध कर देती है कि हम भगवान्‌में प्रेम नहीं चाहते। भगवान्‌में प्रेम होनेके कुछ उपाय ये हैं—

(१) तीव्र चाहके साथ दृढ़ प्रयत्न करना।

(२) जिन पुरुषोंका भगवान्‌में प्रेम है, उनका सङ्ग करना। उनके आज्ञानुकूल चलना और उनका अनुकरण करना।

(३) एकान्तमें भगवान्‌से गद्गद वाणीसे करुण-भावसे रुदन करते हुए प्रार्थना करना।

(४) भगवान्‌के नामका निरन्तर जप करना तथा भगवान्‌के नाम-जपसे प्रेम होता है, यह विश्वास करना।

चारों उपायोंमेंसे एकको भी विश्वासपूर्वक काममें लानेसे प्रेम हो सकता है और चारों ही किये जायँ तो बहुत जल्दी हो सकता है। और भी बहुत-से उपाय शास्त्रोंमें बतलाये गये हैं, पर ये चार मुख्य हैं।

गीताका सार

गीतामें भगवान्‌ने अन्तमें कहा है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(१८। ६६)

इस श्लोकमें चार चरण हैं, जिनमें भगवान्‌ने चार बातें कही हैं—(१) सारे धर्मोंका त्याग कर दो, (२) एकमात्र मेरी शरणमें आ जाओ, (३) मैं सारे पापोंसे छुड़ा दूँगा, (४) चिन्ता मत करो।

ये चार बातें सारी गीताका सार हैं। इसीलिये ये शेषमें कही गयीं। यह गीताका उपसंहार है। जिस विषयसे उपक्रम होता है, उसीसे उपसंहार होता है—आरम्भमें **'अशोच्यानन्वशोचस्त्वं'** और अन्तमें **'मा शुचः'** कहा गया।

भगवान्‌से माँगे तो उन्हींको माँग ले

दयालु पुरुषको मालूम हो जाय कि 'यह भूखा है, पर माँगता नहीं है' तो मालूम होते ही वह दयालु पुरुष उसके पास रोटी पहुँचा देता है। पर यह निश्चय तो होना ही चाहिये कि दयालु है और आकर रोटी खिलायेगा। हमारे प्रभु किसीके दुःखको नहीं देख सकते। हम जितना भी मिजाज करें, भगवान् सबको पूरा करके हमें रोटी खिलायेंगे। बालक जानता है कि माँ मुझे रोटी खिलायेगी ही। वह चाहे जितना ऐंठता हो, दयामयी माँ पुत्रको खिलाती ही है। प्रह्लाद कभी शरण नहीं गया, न कभी प्रार्थना की; भगवान् आये और उल्टे माफी माँगने लगे कि 'मुझे आनेमें देर हो गयी—

'क्षन्तव्यमङ्ग यदि मे समये विलम्बः।'

भगवान्‌को जो दयालु मानता है, उसको शान्ति मिलती है। जो जानता है, मानता है और विश्वास करता है, वह अवश्य शान्तिको प्राप्त हो जाता है। यह तो विशेष बात है कि जो भगवान्‌को हृदयसे चाहता है, भगवान् उसे मिल जाते हैं।

भगवान् सत्संकल्प हैं। उनके संकल्पसे ही हमारा

कार्य बन जायगा। भगवान्‌को चाहते रहो, भगवान् अवश्य मिलेंगे। विलम्ब क्यों होता है? इसीलिये कि हम स्वयं विलम्ब कर रहे हैं। भगवान् तो बिना बुलाये ही आते हैं। फिर हम याचना करें तो भगवान् रुक ही कैसे सकते हैं? हम उन्हें हृदयसे नहीं चाहते, नहीं पुकारते—

लगन लगन सब कोइ कहै लगन कहावै सोय।
नारायण जा लगनमें तन-मन दीजै खोय॥

पुत्रके लिये, धनके लिये, भगवान्‌से प्रार्थना करना—यह तो क्षणिक सुखोपलब्धि है। इतने महान्‌से इतनी छोटी प्रार्थना! हमको तो उनसे वह चीज माँगनी चाहिये, जिसका कभी नाश न हो; सूर्य-चन्द्रमाका नाश होनेपर भी जिसका नाश न हो। प्रत्येक माँग भगवान् पूरी कर देते हैं। जो माँग पेश नहीं करता, उसका कार्य और जल्दी सिद्ध होता है। भगवान् कहते हैं—**'निर्योगक्षेम आत्मवान्।'** (२। ४५) 'राग-द्वेष, प्रिय-अप्रिय, सब द्वन्द्वोंसे रहित हो केवल मेरे परायण हो जाओ।' ऐसा करते ही भगवान् तुरंत प्रकट हो जाते हैं और जीव सदाके लिये सुखी हो जाता है। भगवान्‌से कोई चीज माँगनेकी है ही नहीं। यदि माँगे तो भगवान्‌को ही माँग ले।

भगवान् न्यायकारी और पतितपावन दोनों हैं

भगवान् अधिकारीको ही प्राप्त होते हैं, यह सिद्धान्त है; परंतु एक ऐसा नियम है कि जो अपनेको अनधिकारी, अयोग्य मानता है—यदि वास्तवमें अपने हृदयसे वह इस बातको मान ले तो इस यथार्थ मान्यताका फल भी भगवत्प्राप्ति है। उसे भगवान् प्राप्त हो जाते हैं, वे उससे छिप नहीं सकते। परंतु अपनेको अनधिकारी, अयोग्य कहता रहे और वास्तवमें माने नहीं, तो भगवान् कहते हैं कि यह कपटी है। निष्कपटभाव और हृदयकी सचाई भगवान्‌को मिलाती है। ऐसा नहीं होना चाहिये कि मुखसे तो अपनेको कोई 'अयोग्य, नीच और अनधिकारी' कहता रहे, परंतु व्यवहारमें अपनेको बड़ा मानता रहे। यह तो केवल कथनमात्र हुआ। कहना सहज है, पर बनना कठिन है। ऐसे सच्चे व्यक्तिकी दूसरे प्रशंसा करते हैं तो वह रो देता है। वह समझता है—बेचारे भूलसे ऐसा कह रहे हैं। अतएव यदि हम अपनी अयोग्यताको हृदयसे स्वीकार कर लें तो अयोग्य होते हुए भी योग्य बन सकते हैं। भूल स्वीकार करनेपर सरकार भी छोड़ देती है, यदि भविष्यमें फिर भूल न करनेका आश्वासन दे दिया जाय। भगवान् तो निष्कपटभाव, सरलता और सत्यताको देखते हैं। वास्तवमें सत्यता और निष्कपटभाव आ जानेपर परमात्मा मिल जाते हैं। 'सत्य' भगवान्‌का स्वरूप है। हमलोगोंके हृदयमें कुछ बात और तथा बाहर कुछ और बात रहती है। इसीलिये तो विलम्ब हो रहा है।

कुछ लोग कानूनकी बात कहते हैं—'भगवान् भक्तोंका उद्धार करें तो इसमें उनका क्या निहोरा। पतितों—पापियोंका वे उद्धार करें, तब तो वे 'पतितपावन' हैं।' बात तो सही है, पर प्रभु पतितोंका उद्धार बिना ही कारण बराबर कर रहे हैं; क्योंकि वे सहज दयालु हैं। यदि वे पतितोंका उद्धार नहीं करते तो पतितोंकी दुर्दशाकी कोई सीमा नहीं थी। इसपर कोई कहे कि 'मैं पतित हूँ, मेरा उद्धार कर दें तो मैं तुम्हें पतितपावन मानूँ।' तो यह केवल तर्कमात्र है। वास्तवमें अपनेको 'पतित' मानिये, फिर देखिये कि उद्धार होता है कि नहीं। भगवान् तो पतितपावन हैं ही, आप उन्हें पतितपावन न मानें, तब भी वे उद्धार करते हैं; किंतु वे उद्धार करते हैं अपनी पद्धतिसे। आप तत्काल उद्धार चाहते हैं तो आप उसके योग्य बनिये—अर्थात् अन्तर्हृदयसे अपनेको 'पतित' मानकर भगवान्‌को अपने उद्धारके लिये आर्त होकर पुकारिये। फिर देखिये, आपका उद्धार होता है कि नहीं।

वास्तवमें भगवान् न्यायकारी और पतितपावन दोनों हैं। दोनों बातें एक साथ एक स्थानपर कैसे रह सकती हैं ? यह प्रश्न होता है, पर यही भगवान्की भगवत्ता है। भगवान्की शक्ति अलौकिक है—उनमें दोनों शक्तियाँ—न्यायकारिता एवं पतितपावनता—एक साथ रहती हैं। भगवान् उसके लिये न्याय करते हैं, जो उन्हें न्यायकारी मानता है और जो उन्हें पतितपावन मानता है, उसके लिये वे पतितपावन हैं। अतएव तत्काल अपना उद्धार चाहते हों तो अन्तर्हृदयसे अपनेको पतित मानिये और अपने उद्धारके लिये भगवान्को पुकारिये। पुकार सच्ची होनेपर विलम्ब नहीं होगा।

जो भगवान्को 'पतितपावन' मानता है और कहता है कि 'आप सर्वशक्तिमान् हैं, आप सब कर सकते हैं। न्यायकी बात आप जानें। आप पतितपावन हैं और मैं पतित हूँ, बस, और बातसे मुझे मतलब नहीं है।' तो उसका काम बन जाता है; पर इस कथनमें दृढ़ता और सचाई होनी चाहिये।

कानूनकी रक्षा करके माफी तो दयालु राजा भी दे देते हैं। अपराधीके कारावासका जीवन देखकर विशेष अवसरोंपर कितने ही कैदियोंको राजालोग छोड़ देते हैं। इतनी उनकी स्वतन्त्रता है ही। राजाको ऐसा करनेपर कोई दोषी नहीं ठहराता। पर भगवान्के राज्यमें तो यह कानून है कि 'जो कैदी छूटना चाहे, वही छोड़ दिया जाय।' कितनी दयासे भरा हुआ कानून है। जो मुक्ति चाहता है, उसीको मुक्ति मिल जाती है। इतना ही नहीं, भगवान् तो मुक्तिके लिये बिना चाहे भी मौका देते हैं। फिर चाहनेपर अवसर दे दें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? हमलोगोंको भगवान्ने मनुष्य बनाया है—यही बिना चाहे मुक्तिका मौका देना है—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

भगवान् कभी विशेष कृपा करके बिना हेतु ही मौका देते हैं। वे हमलोगोंके आचरणोंकी ओर नहीं देखते। भगवान् प्रेमी हैं, दयालु हैं, बिना ही कारण प्रेम और दया करनेवाले हैं, सुहृद् हैं—'सुहृदं सर्वभूतानाम्' (गीता ५। २९)। किंतु यह मौका कभी-कभी ही मिलता है; क्योंकि जीव असंख्य हैं। वे प्रभु पारी-पारीसे सभीको मौका देते हैं। इसीलिये मनुष्य-शरीर क्या मिला, मुक्तिका द्वार मिला है। फिर भी सब क्यों नहीं मुक्त होते ? मुक्त न होनेमें हेतु यह जीव स्वयं ही है। भगवान्ने यह बड़ा अच्छा मौका दिया। और जो माँगे उसीको मुक्ति देनेके लिये वे तैयार हैं। भगवान्ने कहा है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
(गीता १०। १०)

'उन निरन्तर मेरे ध्यानमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ कि जिससे वे मेरेको ही प्राप्त होते हैं।'

भगवान् योगक्षेम भी वहन करते हैं, अर्थात् अप्राप्तकी प्राप्ति और प्राप्तकी रक्षा—वे ही करते हैं, किंतु जो निरन्तर भजन करता है, उसीके लिये यह कानून लागू पड़ता है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(गीता ९। २२)

'जो अनन्यभावसे मेरेमें स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए, निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य एकीभावसे मेरेमें स्थितिवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त करा देता हूँ।'

'हे नाथ! मैं आपकी शरण हूँ'—इतना कहने और मनमें निश्चय करनेपर भी भगवान् उद्धार कर देते हैं। भगवान्ने विभीषणसे कहा—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

जो एक बार मेरी शरणमें आ जाते हैं, मैं उनका कभी त्याग नहीं करता। हमारी जो यह धारणा है कि प्रभुने हमारा त्याग कर रक्खा है, यह धारणा ही हमारे त्यागमें हेतु है। प्रभुने ऐसी कोई बात कहीं नहीं कही है। यह तो हमारी ही मूर्खता है कि हम भगवान्‌के वचनों-पर विश्वास नहीं करते। उनकी तो सबका उद्धार करनेकी स्पष्ट घोषणा है—

'''मां व्यपाश्रित्य'''यान्ति परां गतिम्।'
(गीता ९। ३२)

हम ही प्राप्त हुई मुक्तिको ठुकरा रहे हैं।

रामकी व्यापकता

[पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री श्रीदेवरहवा बाबाका उपदेश]

(प्रेषक—श्रीरामकृष्णप्रसाद, एडवोकेट)

प्रत्येक धर्म ईश्वरकी सत्ता स्वीकार करता है। देश और भाषाकी भिन्नतासे ईश्वरके अलग-अलग नाम हैं। अपने देश और धर्ममें भी उसके अनेक नाम हैं, जो उसके अलग-अलग गुणोंका संकेत करते हैं। ये सब अलग-अलग नाम भाषा, देश, धर्मकी भिन्नताके कारण उसी एक ईश्वरका संकेत करते हैं, जो सर्वोपरि, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सर्वनियन्ता और सर्वेश्वर है।

ईश्वरके अनन्त नामोंमें उसका एक नाम 'राम' भी है। 'राम' शब्द 'रम्' धातुसे बना है, जिसका अर्थ है—रमना, रमण करना। चूँकि, ईश्वर सभी जीवोंमें रमण करता है, इसलिये उसका नाम 'राम' भी है। ऐसे तो उसके अनन्त गुणोंके कारण उसके नाम भी अनन्त हैं, किंतु उन सभी नामोंपर यहाँ विचार करना आवश्यक नहीं है। केवल एक ही नाम 'राम' पर ही हम विचार करें और इसकी महत्ता जानें। हमें तो संसारमें रहना है और सांसारिक कामोंको करना है। जिसे हम बाह्य जगत् कहते हैं, उससे हम सर्वथा पृथक् नहीं हो सकते। इसीको आजकल 'पेटका धंधा' कहते हैं। किंतु साथ-ही-साथ हमारी आभ्यन्तरिक बातें भी हैं, जो हमारे आभ्यन्तरसे सम्बन्ध रखती हैं। हमें दोनोंको साथ-साथ लेकर चलना है। यदि केवल पेटका धंधा यानी बाह्य कार्य ही किया जाय और आभ्यन्तरकी उपेक्षा की जाय तो वह भी बुरा है और केवल आभ्यन्तर यानी नामका ही जाप किया जाय और पेटका धंधा यानी बाह्य जगत्‌की उपेक्षा की जाय तो वह भी ठीक नहीं—

राम नाम अरु पेटका धंधा। ज्यादे करे तो दोनों अंधा॥

इसका उदाहरण लीजिये। जैसे शिक्षक विद्यार्थीको पढ़ाता है। उसको पुस्तकका विषय न पढ़ावे और यही कहे कि तुम केवल भगवन्नामका ही जप करो तो उस शिक्षकको हम पागल कहेंगे। उसी प्रकार किसी वकीलके पास कोई अपना विवादग्रस्त विषय उपस्थित करे और उसके उत्तरमें वह केवल रामनाम ही जाप करनेको कहे तो उसे भी लोग पागल ही कहेंगे। ठीक उसी प्रकार किसी कृषक या व्यवसायीके पास कोई जाय और वह उससे कोई वस्तु खरीदे या भावताव करे और उसके उत्तरमें वह रामनाम ही जाप करावे, तो उसे भी लोग पागल ही कहेंगे। भाव यह कि जो जैसा व्यवसाय या पेटका धंधा कर रहा है, उसको छोड़े नहीं, पर करे अपनी आभ्यन्तरिक शुद्धिका यानी भगवन्नाम-स्मरण नियमानुसार करते हुए ही। ऐसा करनेवाला ही उत्तम कहा जायगा। यही गृहस्थके लिये उचित कार्य है। केवल एकको

ही किया जाय और दूसरेकी उपेक्षा की जाय, यह गलत है और गलत होगा। गृहस्थियोंको दोनों काम एक साथ नियमानुकूल करने हैं। यही हमारे शास्त्रोंकी शिक्षा है—

अर्जुनको उपदेश देते हुए गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं कहा है—

'मामनुस्मर युध्य च।'

—'मेरा सदा स्मरण करो और युद्ध करो।'

साधारण गृहस्थोंके लिये भगवान् श्रीकृष्णकी यह वाणी है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

'जो भी करो, जो भी भोजन करो, जो भी हवन या दान करो, उस सबको मेरे अर्पण करो।' सारांश यह कि जो भी हमारी क्रिया हो, उसका संयोग भगवान्से लगा रहे और उनकी स्मृति सदा होती रहे। कोई भी सांसारिक काम जो हमारे लिये अनिवार्य हैं, उसके करनेमें हमारी त्रुटि न हो।

अब 'भगवान् या राम कैसे व्यापक हैं' इसकी उपमा हमें उपनिषद्में मिलती है। कठोपनिषद्का मन्त्र है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

'एक ही अग्नि जैसे निराकार रूपसे सारे ब्रह्माण्डमें व्याप्त है और जिस-जिस आधारभूत वस्तुका जैसा आकार होता है, उसी आकारका वह अग्नि साकार-रूपसे प्रकट यानी प्रज्वलित होता है, उसी प्रकार समस्त प्राणियोंमें परमेश्वर व्यापक होकर उन प्राणियोंके अनुरूप नाना रूपोंमें प्रकाशित होते हैं।' उनमें वस्तुतः कोई भेद नहीं है।' ऐसे ही सर्वव्यापक हमारे राम या हमारे प्रभु हैं। उनकी व्यापकताकी महत्ता समझते हुए हमें उन भगवान्का नित्य-चिन्तन करते हुए ही साथ-साथ अपने जीविकोपार्जनके सारे कामोंको यथायोग्य करते रहना है।

हमारा हृदय एक लकड़ी है और दूसरी लकड़ी यह रामनामका जाप है। जब एक लकड़ीका दूसरी लकड़ीसे संघर्ष होगा तो उससे अग्नि-चिनगारियोंका प्रस्फुटित होना स्वाभाविक है। यही चिनगारी भगवान्की स्थितिकी बोधक है; जिसका लगातार अभ्यास करनेपर ही अनुभव होता है—

नामैव वेदसारांशं सिद्धान्तं च सदाशिवम्।

सब धर्मोंका और वेदोंके ज्ञान-भण्डारका एकमात्र सार यह भगवन्नाम ही है; जो सब सिद्धियोंका देनेवाला और सदा कल्याणकारक है, जिसे भूलकर हम केवल सांसारिक कामनाओंमें पड़े हुए हैं। कामनाओंका कोई अन्त नहीं; एक कामना पूरी हुई कि दूसरी कामना हमारे समक्ष तैयार है, जो हमारे भजनमें बाधा उपस्थित करती है। इसलिये कामनाओंका त्याग करना ही परमावश्यक तथा सुखकारक है। यही शास्त्रविहित है। अब रामकी अथवा ओम्की व्यापकताके विषयमें कुछ गणितद्वारा उदाहरण उपस्थित किये जाते हैं—

संसारमें जितने पदार्थ हैं—जीव या निर्जीव, सभीके अलग-अलग नाम हैं। नाम कोई भी हो, उस नाममें जितने अक्षर हैं, उनको गिन लीजिये। गिननेपर जो संख्या आवे, उसे ४ से गुणा कीजिये। गुणा करनेपर जो गुणनफल आवे, उस संख्यामें ५ जोड़ दीजिये और उस गुणनफलमें ५ जोड़नेपर जो संख्या आवे, उसका दूना कर दीजिये। इस प्रकार द्विगुणित करनेपर जो संख्या बने, उस संख्यामें ८ से भाग दीजिये। भाग देनेपर जो शेष बचेगा, वह केवल दो (२) होगा। यही जो २ शेष है, वह 'रामनाम या ओम्' है।

इसको पूर्णरूपसे समझनेके लिये 'नाम' के कुछ

उदाहरण देखिये । मान लीजिये एक व्यक्तिका नाम 'मदनमोहन' है । इस मदनमोहनमें कुल ६ अक्षर हैं, ६ को ४ से गुणा करनेपर गुणनफल हुआ (६×४)= २४ । इस २४ में ५ (२४+५) जोड़ा गया, जिसका योगफल हुआ २९ । इस २९ संख्याका दुगुना हुआ ५८ और इस संख्या ५८ में ८ से भाग दिया गया (५८÷८), शेष बचा २ । यह शेष बचा हुआ '२' राम या ओम् है ।

इसी तरह एक निर्जीव पदार्थ पर्वतका नाम लीजिये—जैसे 'हिमाचल' । इस हिमाचल शब्दमें ४ अक्षर हैं । ४ में ४ से गुणा करनेपर गुणनफल हुआ १६ । और उसमें ५ जोड़ दिया गया, तब योगफल २१ । और २१ अङ्कका दूना हुआ ४२ । इस ४२ में ८ से भाग देनेसे शेष बचा २ । यही शेष राम-नाम है । इस प्रकार संसारमें जितनी भी वस्तुएँ हैं, जिनके नाम एक अक्षरसे लेकर अनेक अक्षरोंके क्यों नहीं हों, उनकी संख्या जोड़कर उसमें ४ से गुणा कर दीजिये और ऊपर बताये अनुसार उसमें ५ जोड़कर और उस योगफलको दूना करके जो संख्या आये, उसमें बराबर ८से भाग देते जाइये । आप बराबर पायेंगे कि शेषफल २ ही बचता है, जो रामकी या ओम्‌की व्यापकता सिद्ध करता है । यही रामनामका महत्त्व है, जिसका प्रत्येक मनुष्यको अपने स्वाभाविक कामके साथ-साथ नित्य नियमानुसार अवश्य जप करना चाहिये; तभी इसकी विशेषताका अनुभव होगा । यही रामकी, ओम्‌की व्यापकता है और सब धर्मोंका यही उपदेश है, जो सर्वसाधारणके लिये सदा अनुकरणीय है ।

भक्तिकी आदर्श नारियाँ

[भागवत प्रथम स्कन्धमें]

(अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराजका एक प्रवचन)

चेतश्चिन्तय चिन्मयभासं
नूतनजलधररुचिरविकासम् ।
पीतवसनधर सुन्दर नटवर
मधुरविकस्वर सुललितहासम् ॥

जबतक मनुष्य अपने हृदयमें बैठे भगवान्‌के सम्मुख नहीं होगा, तबतक उसमें न पवित्रता आयेगी, न मधुरता, न शीतलता । मुख भगवान्‌की ओर होना चाहिये ।

जो लोग कहते हैं—'तुम चाहे जो खाओ, चाहे जो पिओ, चाहे जो पहनो और चाहे जो करो, हम तुम्हें समाधि लगवा देंगे ।' वे तुम्हें मूर्ख बनाते हैं । जिसका अपने खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने तथा काम करनेपर नियन्त्रण नहीं है, वह अपना मन भगवान्‌में कैसे लगा सकेगा ?

'ईश्वरका स्मरण करना यदि आवश्यक नहीं है तो किसका स्मरण करोगे ?'

लोग कहते हैं—'नाभिके पास एक शून्य है, उसका चिन्तन करो तो तुम्हें भगवान् मिल जायगा ।'

अरे, ईश्वरका चिन्तन नहीं करोगे, ईश्वरकी ओर देखोगे नहीं तो ईश्वर मिल कैसे जायेगा ? ईश्वरका चिन्तन करोगे तो ईश्वर मिलेगा और संसारका चिन्तन करोगे तो संसार मिलेगा—

'यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।' (गीता १७ । ३)

जडका चिन्तन करोगे तो जड मिलेगा, अहंकारका चिन्तन करोगे तो अहंकार बढ़ेगा और ईश्वरका चिन्तन करोगे तो ईश्वर मिलेगा ।

कोई कहे—'हमारी ऐसी परिस्थिति नहीं कि हम ईश्वरका चिन्तन कर सकें, तो इसके लिये हम श्री-

मद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें जिन पाँच स्त्रियोंका और उनके सात भावोंका वर्णन है, उनकी ओर आपका ध्यान दिलाते हैं।

द्रौपदी

इनमें पहली भागवती स्त्री 'द्रौपदी' है। ईश्वरका स्मरण-चिन्तन कैसे होता है—यह इसके चरित्रमें देखिये। यह भगवान्‌की परम भक्ता है और दावेसे कहती है—

'चतुर्भिः कारणैः कृष्ण त्वया रक्ष्यास्मि नित्यशः।'

श्रीकृष्ण! चार कारण हैं, जिससे तुमको सदा मेरी रक्षा करनी ही चाहिये—तुम मेरे सखा हो, सम्बन्धी हो, स्वामी हो और सर्वस्व हो; इसलिये मेरी रक्षा तो तुम्हें करनी पड़ेगी।

इतनी दृढ़भक्ता द्रौपदीपर ऐसी विपत्ति आयी कि जिसकी तुलना नहीं। उसके पाँच पुत्र किशोरावस्थाके थे, उनका विवाह भी नहीं हुआ था। रातमें सोते समय अश्वत्थामाने उन बालकोंके गले काट दिये। इससे बड़ी विपत्ति स्त्रीपर क्या आयेगी?

अर्जुनने द्रौपदीसे कहा—'जिसने तुम्हारे पुत्रोंको मारा है, मैं उसे मारकर लाता हूँ।'

'आक्रम्य यत्स्नास्यसि दग्धपुत्रा।'

'तुम उसके ऊपर पैर रखकर स्नान करना।'

अर्जुनने अश्वत्थामाको पकड़ लिया। श्रीकृष्णने कहा—'इसे मार डालो। इसने तुम्हारे पुत्र मारे हैं।'

अर्जुन—'कुछ भी किया हो, ब्राह्मण है; इसे मारूँगा नहीं।'

बात द्रौपदीके सामने रक्खी गयी कि 'अश्वत्थामाको मारा जाय या नहीं?' द्रौपदीने मानसिक संतुलन खोया नहीं; यद्यपि अपने पाँच पुत्रोंके शव उसके सामने थे, तब भी वह सावधान थी। उसने कहा—

'मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः।'
(श्रीमद्भा० १।७।४३)

'छोड़ दो! छोड़ दो इन्हें! ये ब्राह्मण हैं, अतः सर्वथा पूज्य हैं।'

'वामस्वभावा कृपया ननाम च।'
(श्रीमद्भा० १।७।४२)

द्रौपदीने अश्वत्थामाको दण्डवत् की और उसे छुड़वाया—

मा रोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता।
यथाहं मृतवत्साऽऽर्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः॥
(श्रीमद्भा० १।७।४७)

'भगवान् द्रोणाचार्यकी पतिव्रता पत्नी गौतमी भी तो मेरे समान ही माता है। यदि ये मर गये तो वह माँ रोयेगी। मेरे बेटे मर गये हैं तो मैं बार-बार आँसू बहाकर रो रही हूँ, ऐसे ही वह माँ न रोये।'

इसका नाम भक्त है। कोई माला तो फेरे, किंतु हृदयमें करुणा न हो तो वह भक्त नहीं है। इतने दुःखमें भी इतनी दया—'मेरे बच्चे तो मर चुके, वे तो अब जी नहीं सकते। दूसरी माँके बच्चेको मत मारो।'

ऐसी करुणा, दया, सहानुभूति जिसके हृदयमें है, वह भक्त है।

कुन्तीदेवी

दूसरी महिला है—'कुन्तीदेवी।' द्रौपदीकी सास और श्रीकृष्णकी बुआ।

श्रीकृष्णने कहा—'जो चाहो सो माँग लो।'

कुन्ती—'कृष्ण! हमें रोज-रोज विपत्ति दो!'

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥
(श्रीमद्भा० १।८।२५)

'जगद्गुरु गोविन्द! हमपर बराबर विपत्तियाँ आती

रहें; क्योंकि परमपदस्वरूप तुम्हारे दर्शन उनमें बार-बार होते हैं ।'

कृष्ण—'बुआजी ! भला संसारमें कोई विपत्तिका, दुःखका भी वरदान माँगता है ?'

कुन्ती—'गोविन्द ! प्रत्येक विपत्तिमें तुम्हारे दर्शन होते हैं और तुम कोई-न-कोई शिक्षा देते हो ।'

एक गोपीने कहा—'मेरे सिरमें रोज-रोज दर्द हो तो अच्छा ।'

दूसरी—'ऐसा क्यों ?'

'जब सिरमें दर्द होता है तो प्रियतम श्यामसुन्दर आकर पलँगपर बैठकर मेरा सिर दबाने लगते हैं । इसलिये सिरदर्द मुझे प्यारा है ।'

कुन्ती—'हर विपत्तिमें तुम्हारा दर्शन होता है । जब विपत्ति आती है, तब तुम बचाते हो ।'

'जब लाक्षागृहमें आग लगी, जब भीमको विष दिया गया, जब द्रौपदी सभामें नंगी की जाने लगी, जब वनमें दुर्वासा शाप देनेका ढंग बनाकर आये, जब युद्धमें कोई अर्जुनको अपने बाणका लक्ष्य बनाने लगता—तब विपत्तिमें बचाने तो तुम आये । दुर्वासासे बचाने, बटलोईका जूँठा शाक खाने तुम आये । और युद्धमें तुम थे जो—

आयुर्मनांसि च दृशा सह ओज आर्च्छत् ।

अपनी चितवनसे विपक्षियोंकी आयु, मन, दृष्टि, ओज—सब खींचते रहते थे । वे अर्जुनको लक्ष्य करना चाहते तो तुम हँसते नेत्रोंसे देख लेते । उनकी दृष्टि, मन तुममें लग जाता ।

यदि विपत्तिमें भगवान्‌के दर्शन होते हैं तो भक्त विपत्तिसे प्यार करता है; क्योंकि उसे प्यार तो भगवान्‌से है ।

उत्तरा

तीसरी स्त्री उत्तरा है । वह गर्भवती थी । उसके पेटमें परीक्षित् थे । अश्वत्थामाने गर्भके बालकको नष्ट करनेके लिये ब्रह्मास्त्र छोड़ा । उत्तरा अर्जुन या भीमके पास रक्षाके लिये नहीं दौड़ी । उसने पुकार की—'कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण !'

विपत्ति आनेपर जो भगवान्‌को छोड़कर पुलिस, सेठ या मन्त्रीके पास दौड़ता है—वह भक्त कैसा ?

श्रीकृष्णने कहा—'उत्तरा ! तू क्षत्राणी होकर मरनेसे डरती है ?'

उत्तरा—'नहीं, मैं मरनेसे नहीं डरती । मेरे गर्भमें जो है, वह तुम्हारा भक्त है । उसे तुम बचा दो । मैं मर जाऊँ । पाण्डव यदि निर्वंश हो जायँगे तो तुम्हारा बड़ा अपयश होगा कि जिन पाण्डवोंके पक्षमें भगवान् थे—उनके वंशमें कोई पानी देनेवाला भी नहीं बचा ।'

श्रीकृष्ण—'तुम मुझे कुछ दो तो मैं तुम्हारा पुत्र दूँ ।'

उत्तरा—'मैं क्या दे सकती हूँ ? ब्रह्मास्त्र सामने बढ़ा आ रहा है ।'

श्रीकृष्ण—'मैं तुम्हें अपनी माँ बनाता हूँ ।'

श्रीकृष्ण शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज रूप होकर उत्तराके गर्भमें प्रविष्ट हुए । वे उत्तराके गर्भसे बाहर रहकर भी तो अपने संकल्पसे गर्भस्थ परीक्षित्‌को बचा सकते थे । पर वे कहते हैं—'मुझे ऐसी माँ चाहिये जो स्वयं मरकर मेरे भक्तको बचाना चाहती है ।'

सुभद्रा

यहीं श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें ही एक भक्त स्त्री और है, किंतु वह आपको दीखती नहीं । उसका पुत्र मारा गया, किंतु उसके नेत्रोंमें अश्रु नहीं आया; उसके पौत्रको मारनेके लिये ब्रह्मास्त्र छोड़ा गया, पर उसने श्रीकृष्णको रक्षाके लिये पुकारा नहीं । वह स्त्री है—'सुभद्रा', श्रीकृष्णकी सगी बहिन ।

सुभद्राने श्रीकृष्णसे न सलाह माँगी और न सहायता। वह कहती है—'कृष्ण जो करें, वह ठीक।'

एकमात्र पुत्र अभिमन्यु मरा। सुभद्रा—'कृष्ण करें सो ठीक।'

पाण्डवोंपर विपत्तियाँ आयीं, पर सुभद्रा अविचलित—'कृष्ण जो करें, वही ठीक।'

एकमात्र वंशधर पौत्र गर्भस्थ और ब्रह्मास्त्र चला पुत्रवधूको जलाने; किंतु सुभद्रा मौन बैठी देखती रही। यह सर्वथा निर्गुण भक्त है। उसका अटल विश्वास है—'कृष्ण मेरे अपने हैं। वे जो करें, वह ठीक।'

आपने श्रीजगन्नाथपुरीमें देखा होगा कि सुभद्रा श्रीकृष्णके साथ रहती है। वह अर्जुनके साथ नहीं रहती। श्रीकृष्णपर पूर्ण निर्भरता है उसकी।

भगवान्‌के मनमें अपना मन मिल जाना, भगवान्‌की क्रियामें अपनी क्रिया मिल जाना, इसका नाम है—भक्ति। सुभद्रा साक्षात् भक्ति है।

आपको अपने जीवनमें भक्ति लाना है तो द्रौपदीकी भाँति करुणा, कुन्तीकी भाँति विपत्तिमें भगवद्दर्शन, उत्तराकी भाँति भक्त-रक्षार्थ आत्मबलिदानकी तत्परता और सुभद्राकी भाँति निर्भरता ले आइये।

प्रथम, मध्यम, उत्तम और निर्गुण—ये चार भेद भक्तिके इनमें हैं। सुभद्रा निर्गुण है।

गौरूपा पृथ्वीदेवी

पाँचवीं स्त्री, जिसका वर्णन भागवतके प्रथम स्कन्धमें है, आधिदैविक स्त्री है। उसे भोजन नहीं मिला है। भूखसे दुबली हो गयी है। नेत्रोंमें अश्रु हैं। 'यवसमिच्छतीम्'—(श्रीमद्भा० १।१७।३) चाहती है कि कहींसे कुछ खानेको घास मिले। उसके पुत्रके तीन पैर टूट गये हैं। ये हैं—'गौरूपा पृथ्वी देवी'। वृषभरूपधारी धर्मसे बातें कर रही हैं। इन्हें इसका सर्वथा दुःख नहीं है कि 'मेरा क्या हो रहा है ? अपनी क्षुधा और अपने पुत्रके दुःखकी चिन्ता इन्हें नहीं है। ये सम्पूर्ण विश्वके दुःखसे दुखिया हैं। किसीके प्रति दोष-दृष्टि इनकी नहीं है। इनका एकमात्र दुःख है—'श्रीकृष्णका वियोग होनेसे सम्पूर्ण विश्व शून्य हो गया है।'

परीक्षित्‌ने वृषभसे पूछा—'तुम्हारे तीन पैर किसने तोड़े ?'

वृषभने कहा—

अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादिति केष्वपि निश्चयः।
(श्रीमद्भा० १।१७।२०)

'हमें पता नहीं कि दुःख किस प्रकार आता है ?'

दुःखाकार वृत्ति प्रारब्धानुसार अपने-आप आती है। अनेक बार बिना बाहरी कारण हुए भी अन्तःकरणमें दुःखाकार वृत्ति उदित हो जाती है।

पृथ्वीने कहा—

तेनाहं गुणपात्रेण श्रीनिवासेन साम्प्रतम्।
शोचामि रहितं लोकं पाप्मना कलिनेक्षितम्॥
(श्रीमद्भा० १।१६।३०)

'उन सर्व-सद्गुणैकधाम श्रीनिवास प्रभुके वियोगसे शून्य बने और पापी कलिसे ग्रस्त लोकके लिये मुझे शोक है।'

'श्रीकृष्णसे हमारा वियोग हो गया, यही मेरे दुःखका हेतु है।'

इसका नाम भक्ति है। हम धन जानेसे, परिवार छूटनेसे दुखी नहीं हैं। मृत्यु अभी शरीरको ले जाय; इसका कोई दुःख नहीं। हम तो अपने प्राण-प्रियतमके वियोगसे दुखी हैं।

सुख-दुःखका सम्बन्ध भगवान्‌से होना चाहिये। जो सुख दूसरेसे आता है, वह झूठा है और जो

दुःख दूसरेसे आता है, वह भी झूठा है। कुछ पाकर और कुछ बनकर सुखी बनानेवाले भक्तिके अधिकारी ही नहीं हैं। हमारा हृदयकमल या तो भगवान्‌के संयोगसे खिले या उनके वियोगसे सूख जाय, यह 'भक्ति' है। भगवान् जब हस्तिनापुरसे द्वारका जाने लगते तो हस्तिनापुरकी स्त्रियोंकी क्या दशा होती? और द्वारका-प्रवेशके समय वहाँकी स्त्रियोंको कैसा उल्लास आता?

द्रौपदीका आदर्श है—'विपत्तिमें इतना नहीं खो जाना चाहिये कि दूसरोंकी विपत्तिका ध्यान ही न रहे।' यह भक्ति है।

कुन्तीकी भक्ति है—'हमको विपत्तिसे सर्वथा भय नहीं है, किंतु विपत्तिके, दुःखके अन्तमें तुम मिल जाया करो।'

उत्तराकी भक्ति है—'मैं भले मर जाऊँ, किंतु आपके भक्तकी और सुयशकी रक्षा होनी ही चाहिये।'

सुभद्रा सबसे विलक्षण हैं। उनकी भक्ति है—'जो तुम्हारी राय, सो मेरी राय। मुझे बोलने या सोचनेकी आवश्यकता ही नहीं है।'

संसारमें अभिमानी, आग्रही, हठी, नासमझके अतिरिक्त और कोई दुखी नहीं होता। वह चाहता है—'ऐसा ही हो। ऐसा ही रहे। यह न हो।' उसने ईश्वरकी इच्छाके सामने—उनके मङ्गलविधानके सामने अपने मनको खड़ा कर दिया। वह अपनेको महत्त्व देता है और चाहता है कि 'ईश्वर हार जाय, हम जीत जायँ।' ऐसे व्यक्तिको संसारमें दुःख मिलता है। आश्चर्य यह है कि मनुष्य अपनी नासमझी मिटाना नहीं चाहता।

स्मरण रखिये—

जबतक मनुष्यको दूसरेमें दोष दीखें, वह धर्मात्मा नहीं है।

जबतक मनुष्यको दूसरोंमें और अपनेमें भी दोष दीखें, धर्म उसके जीवनमें अभी आया नहीं।

दूसरोंमें दोष न दीखें, पर अपनेमें दोष दीखें तो भक्ति आ सकती है, किंतु ईश्वरमें स्थिति नहीं हो सकती। ईश्वरमें स्थिति तब होगी, जब केवल ईश्वर ही दीखेगा। अपने या पराये किसीमें दोष नहीं दीखेगा।

पामर कहता है—'सब पतित हैं।'

विषयी कहता है—'तुम पतित हो।'

साधक कहता है—'मैं पतित हूँ।'

सिद्ध कहता है—'कोई पतित नहीं, सब भगवान् हैं।'

सृष्टि भगवान्‌की है। भगवान्‌के काममें जो दोष निकाले, वह भक्त कैसा?

गोस्वामी तुलसीदासजीके प्रति

(रचयिता—श्रीनिर्भय हाथरसी)

तुलसी तुम्हारी राम-कथा पढ़ते हैं, किंतु
रामका पवित्र आदर्श अपनाते नहीं।
भरतके चरित्रका पाठ करते हैं नित्य,
भाई ही भाईको किंतु अब सुहाते नहीं॥
स्वर्णमृगके कारण ही रामने सहे थे कष्ट,
जानते हैं, लोभसे किंतु बच पाते नहीं।
तन-धनसे स्मृतिके उत्सव मनाते, किंतु
मनसे तुम्हारी जयन्तियाँ मनाते नहीं॥

एक महात्माका प्रसाद

(प्रेषक—श्री'माधव')

प्रीति प्रीतमका ही स्वभाव है । प्रीतिमें ही प्रीतमका नित्य वास है । प्रियताकी जागृतिमें ही रसकी अभिव्यक्ति है । रसकी अभिव्यक्तिमें ही जीवनकी पूर्णता है । रस और सुखमें बड़ा भेद है । रससे अरुचि नहीं होती और न रसकी क्षति, निवृत्ति तथा पूर्ति ही होती है । रसकी नित नव वृद्धि होती है, इस दृष्टिसे रस अनन्त है । सुखके भोगमें मानव पराधीन है; वह श्रमित हो असमर्थता, अभाव एवं पराधीनतामें आबद्ध होता है, पर रसकी अभिव्यक्तिमें श्रम, पराधीनता, अभाव आदिकी गन्ध भी नहीं है । रसकी भूख बढ़नेपर ही सुखासक्तिका नाश होता है । सुखासक्तिका नाश होते ही रसकी अभिव्यक्ति स्वतः होती है । रस अनन्तका स्वभाव है और मानवकी माँग है । रसकी माँगसे निराश होना घोर प्रमाद है । सुखकी आशा करना भूल है । नित्य नवरसकी उत्कण्ठा उत्तरोत्तर बढ़ती रहे, यही मानवके प्रयासकी परावधि है । रससे मानवकी जातीय तथा स्वरूपकी एकता है और सुखसे मानवकी केवल मानी हुई एकता है, वास्तविक नहीं; कारण कि सुखकी उत्पत्ति दुःख तथा पराधीनतासे होती है । जिसका मूल दुःख तथा पराधीनता है, उससे जातीय एकता हो नहीं सकती । अतः सुखकी आशाका त्याग तथा रसकी उत्कट लालसा जाग्रत् करनेमें ही मानवके दायित्वकी परावधि है ।

चमत्कार और आडम्बर-शून्य साधक

जिसका मन है अमल, सौम्य; है मौन, भाव जिसके संशुद्ध ।
निग्रहीत है सहज, सतत जो रहता प्रभुमें नित्य निरुद्ध ॥
बाह्याडम्बरशून्य सरल जीवन सादा शुचि रहित-विकार ।
चमत्कारको समझा जाता दूषित जहाँ व्यर्थ निस्सार ॥
लोगोंको आकर्षित करके देना उन्हें सदा उपदेश ।
बार-बार है उन्हें सुनाना, मिला हुआ प्रभुका संदेश ॥
अपनेमें श्रद्धा उपजाकर करना अति उनका उपकार ।
अच्छा हो, पर उक्त संतजन, करते नहीं इसे स्वीकार ॥
बिना किसी भी चमत्कारके, बिना दिये कुछ भी उपदेश ।
उनके मूक सत्य जीवनसे मिलता सहज दिव्य संदेश ॥
होता रहता उससे पावन सहज चराचर सब संसार ।
दिव्य वायुमण्डल बनता, फैलाता सात्त्विक भाव-विचार ॥
सच्चे साधक बना दिव्य प्रभुकृपा अहैतुकको आधार ।
चलते दृढ़ साधनपथ पर वे करके सभी त्याग स्वीकार ॥
बाह्य प्रदर्शन—आडम्बरसे रह अति दूर, छोड़ अभिमान ।
शीघ्र पहुँच जाते वे दुर्लभ प्रभुके पदपर साधु महान ॥

आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ

भगवान्‌की रुचि हमें जैसी प्रतीत हो, उसका हम आन्तरिक उल्लाससे स्वागत करें

संतोंकी बाहरी चेष्टाको, चेष्टाके सच्चे अर्थको समझ लेना आसान काम नहीं है। मन शुद्ध हुए बिना अटकल-पच्चूपनेका निर्णय प्रायः गलत ही होता है और कहीं हम उसकी नकल करने चलें—तो सब समय नकल करना प्रथम तो सम्भव ही नहीं है और यदि आगे-पीछे सोचे बिना कभी साहस बटोरकर कर बैठें—तब आगे चलकर, अथवा तुरंत ही प्रायः पछताना पड़ता है। इसलिये सावधान रहना चाहिये।

एक संत थे। नदी पार कर रहे थे नावसे। नदीका प्रवाह बहुत चौड़ा था। जब नाव ठीक बीचमें आयी तो मल्लाह चिल्ला उठा—'राम ही बचावें, बहुत जोरका तूफान आ रहा है!' धारा बड़ी तेज थी, अपनी पूरी शक्ति लगाकर मल्लाह डाँड़ खे रहा था। थोड़ी ही देरमें तूफान आ गया, अभी सैकड़ों गज दूर थी नाव किनारेसे। संतके अतिरिक्त पंद्रह-बीस यात्री और थे उस नावपर। तूफानका वेग बढ़ता ही गया; मल्लाहकी शक्ति समाप्त-सी होने लगी डाँड़ खेते-खेते। पुकार उठा मल्लाह—'नाव डूबती दीखती है, भगवान्‌को याद कीजिये आपलोग; अब वे ही बचा सकते हैं।' डरके मारे सभी पुकारने लगे भगवान्‌को, किंतु वे संत तो बड़े ही विचित्र निकले। उन्होंने क्या किया कि अपना कमण्डलु उठाया और नदीमेंसे जल भर-भरकर नावमें डालने लगे—एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः,बस, डालते ही जा रहे थे। सबको अपनी जानकी पड़ी थी। 'त्राहि, त्राहि, नाथ!' सभी पुकार रहे थे। संतकी ओर देखकर भी यात्री उन्हें इस चेष्टासे रोकनेसे रहे। मल्लाहसे नहीं रहा गया। संतोंका भक्त होनेपर भी वह बोल ही उठा—'महाराज! नावमें पानी डाल-डालकर और जल्दी इसे क्यों डुबाना चाह रहे हो?' पर कौन सुने, संतने तो और भी शीघ्रतासे पानी डालना जारी रक्खा। दो-तीन मिनट बीतते-न-बीतते मल्लाह चिल्ला उठा—'महाराजजी! अब भगवान्‌की कृपा तो ऐसी दीखने लगी कि नाव किनारे लग सकती है, किंतु आप तो इसमें पानी भरकर डुबानेपर ही तुले हुए हो।' 'हैं ऐसी बात है'—कहकर संतने अब नावके भीतर जो पानी वे डाल चुके थे, उसे बाहर कमण्डलुमें भर-भरकर फेंकने लगे। पसीनेसे वे लथपथ हो रहे थे, पर भीतरका पानी अब बाहर फेंकते ही जा रहे थे। लोगोंने समझा—'संत पागल हैं।'

आखिर नाव किनारे लग ही गयी। यात्री भी उतरे। मल्लाह श्रद्धालु था। किसी भी संत-महात्मासे उसने उतराई ली ही नहीं थी। गरीबोंको वह यों ही पार कर देता था। याचनातक उसने नहीं की थी किसीसे भी उतराई की उसने अपने जीवन भर। लोग जो देते थे, उसीसे उसका जीवन चलता था। अस्तु! उसके मनमें आया संत पागल होंगे, किंतु नाव तो पार लगी है इनकी उपस्थितिके कारण। उसने डाँड़ फेंककर संतके चरण पकड़ लिये और पूछ बैठा—'महाराज! आपने ऐसा क्यों किया? पहले तो पानी भीतर डाल रहे थे, फिर बाहर डालने लगे।' संत हँसे और बोले—"देखो, मेरी नकल तो मत करना और मैं जो कह रहा हूँ, उसे समझनेकी चेष्टा करना। तुमने कहा—'नाव डूबने जा रही है।' तुम्हारी बात सुनकर मेरे मनमें आया कि 'प्रभुकी इच्छा है कि नाव डूब जाय, फिर मेरे लिये क्या कर्तव्य है? नाव डूबे या बचे, इससे मेरे लिये कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, किंतु मेरा तो कर्तव्य यही है कि उनके—प्रभुके परम मङ्गलमय विधानमें मेरे द्वारा सहयोगका दान हो जाय। बस, मैंने कमण्डलु उठाया और पानी डालने लगा—दूसरे शब्दोंमें मेरा प्रयास नावको डुबानेकी दिशामें रहा, या हुआ, या दीखा। और फिर जैसे ही तुमने यह बात कही कि 'नावके बचनेकी आशा है' बस, उसी क्षण मेरा प्रयास नावको बचानेकी दिशामें चल पड़ा—यह जानकर कि 'प्रभु नावको बचाना चाह रहे हैं।' बस, प्रभुकी मङ्गलमयी इच्छामें अपनी इच्छा मिला दिया करो। इसका यह अर्थ तुम मत मान लेना कि कोई मरता हुआ दीखे तो किसी वैद्यके घरसे लाकर उसे जहर खिला दो। इसका अर्थ इतना ही है कि 'भगवान्‌की रुचि तुम्हें जैसी प्रतीत हो, उसका तुम आन्तरिक उल्लाससे स्वागत करो।' तुम जिस दिन सच्चे संत बन जाओगे, उस दिन तो तुम्हारे अंदर कोई संकल्प ही नहीं रहेगा, कोई कामना ही नहीं रहेगी; तुम्हारे द्वारा स्वाभाविक परम मङ्गलमयी चेष्टा ही निरन्तर होती रहेगी। उससे पहले तुम्हें चाहिये कि जो भी फलरूपमें तुम्हें प्राप्त हो, उसका आन्तरिक उल्लाससे स्वागत करो। प्राणोंका उल्लास लेकर मन-ही-मन पुकार उठो—'प्रभो! तुम्हारी

मङ्गलमयी इच्छा पूर्ण हो।' सारांश यह है कि तुम छोटी बातोंके लिये तो कहना ही क्या है, अपनी, अपने साथियोंकी मृत्युकी सम्भावना दीखनेपर भी व्यावहारिक जगत्में उससे बचने-बचानेके लिये सात्त्विक उपायोंका आश्रय तो ले लो, पर भयभीत मत होओ; अपितु परम उल्लासके साथ मृत्युका स्वागत करना सीखो—'मृत्युके रूपमें भगवान् ही आ रहे हैं, तुम्हारा मङ्गल करनेके लिये'—इसे इतने उल्लाससे अपने जीवनमें मूर्त्त कर लो मानो मृत्युको तुम निमन्त्रित कर रहे हो, मेरी तरह डूबती हुई नावमें पानी डालनेकी भाँति।''

इतना कहकर संत चले गये। इस कथासे हमें यह भी सीखना चाहिये कि हम जिन्हें संत मानते हों, उनकी चेष्टामें गुण-दोष न देखकर, भूलकर भी उनकी नकल न करके उनकी सात्त्विक आज्ञाओंके पालनमें जुटे रहें, तभी संतका असली सङ्ग हमारे द्वारा होगा।

भगवान्की यश-कथाके श्रवणका अद्भुत प्रभाव हमारे जीवनमें क्यों नहीं व्यक्त होता—विश्लेषण और निदान

असली संतकी कोई-सी बात किसी दिन किसी क्षण मनमें उतर जाती है, उसपर पर्वतकी तरह अचल विश्वास हो जाता है और जीवनके उस साँचेमें ढलते देर नहीं लगती। और यह हुआ कि भगवान् तो उसका स्वागत करनेके लिये पहलेसे ही तैयार खड़े रहते हैं, वह व्यक्ति देखते-देखते निहाल हो जाता है, कृतार्थ हो जाता है।

पढ़ना-लिखना बुरा नहीं है, पढ़-लिखकर विवेकका उपयोग करना ही चाहिये, सत्साहित्यका अनुशीलन करके जीवनको आगे बढ़ानेमें, भगवान्की ओर मोड़नेमें जागरूक होना ही चाहिये, किंतु जो पढ़ाई-लिखाई, जो विवेक, जो साहित्य हमारी सरलताका हनन करके पद-पदपर हमें संशयालु बना देता है, संत-जगत्के प्रति अनास्था उत्पन्न करा देता है—सम्पूर्ण संत-जगत्को हमें ढोंगियोंसे ही भरा दिखलाने लग जाता है—वैसी पढ़ाई-लिखाई, वैसा विवेक, वैसा सत्साहित्य तो जनसाधारणका कल्याण करनेसे रहा। मस्तिष्क-प्रधान और हृदय-प्रधान—बस, ये ही दो वर्ग जनसाधारणके बनते हैं। इन्हींको परमार्थमें हम बुद्धिमार्गका साधक और विश्वास-मार्गका साधक कहकर पुकारते हैं।

बहुधा प्रश्न होते हैं—'असली संतके मुँहसे निकली हुई भगवत्कथाको सुननेपर उसका क्या प्रभाव पड़ता है? उसका कैसा अद्भुत प्रभाव पड़ना चाहिये? और जैसा प्रभाव पड़ना चाहिये, वैसा श्रोताओंपर क्यों नहीं पड़ता? और यदि पड़ता भी है तो वह स्थायी क्यों नहीं होता?' इन प्रश्नोंका सीधा उत्तर यह है कि भगवान्की कथा सुननेका प्रभाव तो व्यक्त होकर ही रहेगा, संतके मुँहसे निकली हुई भगवद्-यश-कथा अपना जादू दिखलाकर ही रहेगी। भगवत्कथा सुननेका प्रभाव, एक बार ही सुननेका प्रभाव यह होता है कि फिर संसार इस रूपमें नहीं रह जायगा। 'घर-द्वार सब छूट जायगा, हमारे सम्बन्धीजन रोते-बिलखते रह जायँगे और फिर हम उन्हें नहीं मिलेंगे, हम कपड़ा रँगकर साधु-संन्यासी ही बन जायँगे।' यह मतलब नहीं है; किंतु यह अवश्य है कि यह संसार मनसे तो सचमुच-सचमुच निकल ही जायगा। फिर इसपर असर ही नहीं पड़ेगा इस संसारके किसी चढ़ाव-उतारका। अभी तो हमारी यह दशा है कि क्षुद्र-से कारण भी क्षण-क्षणमें हमारे मनका नक्शा पलटते रहते हैं और फिर भी हम कहते हैं कि हमें रामायणकी कथा, भागवतकी कथासे बढ़कर अधिक प्रिय कोई वस्तु है ही नहीं। यह 'आत्मवञ्चना' है। यदि हम आत्मशोधन करें तो स्वयं पता लग जायगा कि इसे 'आत्म-वञ्चना' कहना सोलह आना ठीक है कि नहीं।

भगवत्कथाके इस माहात्म्यको ध्यानमें रखकर इसपर ध्यान देते हुए यदि हम कहीं कथा सुनने जायँगे तो एक-दो बार ही जानेकी जरूरत होगी। फिर तो जीवन भगवान्की ओर ऐसा मुड़ेगा कि हम स्वयं ही दंग रह जायँगे। अतिशयोक्ति नहीं है, कोई करके देखना चाहे तो साहस बटोरकर देख ले सकते हैं। किंतु सोडावाटरके जोशकी तरह साहस न बटोरें, लहराते हुए समुद्रकी तरह साहस लेकर आगे कदम बढ़ायें। समुद्र वहीं रहता है, लहरा उठता है बड़े वेगसे; किनारा ऊँचा रहनेपर टकराता है, उससे बार-बार घंटोंतक और फिर मानो थककर पीछेकी ओर हट जाता है। किंतु कुछ ही घंटोंके लिये पीछे हटता है। 'वह तो आयेगा ही, उसी दिन ही एक सुनिश्चित अवधिके अन्तरमें अवश्य आयेगा—किनारेको मानो डुबा देनेके लिये।' ऐसा साहस लेकर जायँ—पीछे पछतानेकी मनोवृत्तिको सर्वथा सदाके लिये जलाञ्जलि देकर, ठंडे पड़ जानेकी आदतको आगमें जलाकर।

× × ×

अच्छी बात कहना-सुनना, भगवान्‌की कथा सुनना— बिल्कुल ही प्रिय न लगनेपर भी बहुत-बहुत मङ्गलकारी है। 'आत्मवञ्चना'की बात, जो ऊपर लिखी है, उसका अर्थ इतना ही है कि यदि सचमुच भगवान्‌की कथा हमें सबसे अधिक प्रिय लगती होती तो हमें यह पद भी अपने अंदर चरितार्थ होते अवश्य दीखता—

यों मन कबहूँ तुमहिं न लाग्यौ।
ज्यौं छल छाँडि सुभाव निरंतर रहत बिषय-अनुराग्यौ॥
ज्यौं चितई पर नारि, सुने पातक प्रपंच घर-घर के।
त्यौं न साधु सुरसरितरंग निरमल गुन-गन रघुबर के॥

'हाय रे! मेरा मन तुममें नहीं लगा। प्रभो! जैसे यह कपट छोड़कर विषयोंमें निरन्तर रचा-पचा रहता है, वैसे नहीं लगा। नाथ! परस्त्रीकी ओर जैसे आँखें बराबर चली जाती हैं, गाँवकी मलिन-चर्चा सुननेमें इतना रस आता है कि छोड़नेका मन ही नहीं करता—वैसे कभी भी महात्माओंके दर्शनके लिये मेरी आँखें नहीं ललचायीं, कभी भी भगवान्‌की गुणावली—गङ्गाकी धाराकी तरह, गङ्गाकी निर्मल लहरोंकी भाँति निर्मल करनेवाले भगवान्‌के यश, भगवान्‌की कथाकी ओर कानोंमें उन्माद पैदा करनेवाली उत्कण्ठा नहीं जागी।'

यह पद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजकी रचना है, जिन्होंने रामचरितमानस-जैसे अद्वितीय सुन्दर महान् कल्याणकारी ग्रन्थकी रचना अवधी भाषामें की है। तो क्या महासिद्ध, भगवत्प्राप्त संत नहीं थे वे जो ऐसा कह गये हैं अपने लिये? वे परमसिद्ध, भगवत्प्राप्त संत अवश्य अवश्य अवश्य थे; किंतु भगवत्प्राप्त संत—जिन्होंने भक्तिमार्गकी साधनासे महासिद्धकी स्थितिमें अवस्थिति प्राप्त की है, भगवद्-भक्तिसे सिद्ध हुए हैं; उनकी स्थिति, अनुभूति, उनके अन्तः-करणकी कथनमात्रके लिये बची हुई बुद्धि-मन-इन्द्रियोंकी अवस्था कैसी होती है—इसे वे ही जानते हैं। तो क्या ज्ञानमार्गकी साधनासे महासिद्ध हुए संतकी स्थिति कुछ भिन्न होती है? नहीं, ऐसी बात बिल्कुल नहीं है। किंतु यह ऐसी पहेली है, जिसे हम सुलझा सकेंगे सचमुच महासिद्धि प्राप्त कर लेनेपर ही। एक महात्मासे किसीने इसी प्रकारका प्रश्न किया था। उसके उत्तरमें उन्होंने कहा था—'महात्माओंका गज अपने दोषोंको नापनेका—जनसाधारणकी अपेक्षा दूसरा होता है'। अपने अंदर किसी भी दोषकी छायाकी छाया भी उन्हें स्वयंको कभी दीख जाय तो वह इतना विशाल—बड़ा दीखने लगता है कि बस, उसकी कोई इयत्ता नहीं। असली महात्मामें कोई दोष न होनेपर भी उन्हें क्यों दोष दीखता है अपने अंदर—महात्मा बने बिना हम उसकी कल्पनातक कभी नहीं कर सकते। अतएव हमें तो इसीसे प्रयोजन रखना चाहिये कि खूब कथा सुनें भगवान्‌की, खूब सत्सङ्गकी बातें सुनें, पर साथ ही आत्मशोधन भी करते रहें।

× × ×

माँझी

(रचयिता—प्राचार्य श्रीजयनारायणमल्लिक, एम. ए. द्वय, स्वर्ण-पदक-प्राप्त, डिप. एड., साहित्याचार्य, साहित्यालंकार)

सागर-तट पर बैठी हूँ कबसे मैं नाथ! अकेली,
चले गये मेरे जितने थे, बान्धव, सखी, सहेली।
जीवन-नौका जीर्ण पड़ी है, उठती प्रबल बयार।
कैसे पहुँचेगी यह तेरे स्वर्ण-धामके द्वार?
तरल-तरंगमयी लहराती रत्नाकर-जल-धारा,
अन्धकारमें नहीं दीखता मार्ग-प्रदर्शक-तारा।
जर्जर तरणी तीव्र वीचिमें हिलती बारंबार,
कम्पित भीत हृदय है नाविक, कैसे उतरूँ पार?
किया मधुर शृंगार, उठा है भव-सागरमें ज्वार,
क्षण क्षण होता अन्तस्तलमें अतुलित भय-संचार,
माँझी मेरे, चलो मुझे ले, इस अज्ञात सिन्धुके पार,
जहाँ न होगी अन्तस्तलमें माया-वीणाकी झंकार।

सत्संग-वाटिकाके बिखरे सुमन

१—सांसारिक बुद्धि-कौशलसे मनुष्य संसारका बन्धन काटना चाहे तो वह बन्धन और भी कठिन होता जाता है। भगवान्‌का आश्रय न करके जागतिक बुद्धि-कौशलका आश्रय आसुरीभावका आश्रय है। इस आश्रयमें भगवान्‌की जगन्मोहिनी माया हमारे ज्ञानको हर लेती है। अतएव साधकको निरन्तर सावधान रहना चाहिये कि सांसारिक बुद्धि-कौशलका आश्रय न ले; आश्रय निरन्तर केवल भगवान्‌का ही रक्खे। साधककी चित्तवृत्तिके विषय होने चाहिये—'भगवान्'। संसारके पदार्थ और कार्य तो भगवान्‌की पूजाके साधनरूपमें रहने चाहिये। इस प्रकार साधककी दृष्टिमें और सांसारिक वृत्ति रखनेवालोंकी दृष्टिमें मौलिक मतभेद रहता है। साधकका हानि-लाभ दूसरा, सांसारिक लोगोंका हानि-लाभ दूसरा×××। गाँठ खुलनेके लिये सांसारिक बुद्धि-कौशलमें मूर्ख होना ही पड़ेगा। सांसारिक हानि-लाभमें विपरीत बुद्धि करके, भगवान्‌की कृपापर विश्वास करके जब भगवान्‌की सेवामें लगेंगे, तभी बन्धन खुलेगा।

२—सांसारिक बन्धनोंको तोड़नेमें पहले थोड़ा दुःख होता है, कारण सांसारिक बन्धनोंमें रहनेका अभ्यास हो गया है—अनन्त जन्मोंका। सांसारिक बन्धनको तोड़ना अमृतकी कड़वी घूँट है अर्थात् पहले वह कड़वी लगती है, पर पीछे वह अपना अमृतमय प्रभाव प्रकट करती ही है। भगवान्‌ने सात्त्विक सुखकी व्याख्या की है—

'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।'

(गीता १८। ३७)

इस बातको समझकर जो पुरुष सांसारिक बन्धनोंको काटनेके लिये तैयार हो जाता है, वही 'साधक' की श्रेणीमें आता है।

३—जिसकी चित्तवृत्तिका प्रवाह निरन्तर भगवान्‌की ओर ही बहता हो, वह है—'साधक'।

४—साधकको संसारकी ओरसे मुँह मोड़कर भगवान्‌की ओर करना ही पड़ेगा। जो व्यक्ति पूर्व जाना चाहता है, उसे पश्चिमसे हटाकर पूर्वकी ओर मुँह करना ही पड़ेगा। पूर्वकी ओर मुँह करनेपर शक्ति न हो तो चाहे दो कदम ही चले, वह बढ़ेगा पूर्वकी ओर ही। पर उस ओर बढ़नेके लिये मुँहका रुख तो उधर होना ही चाहिये।

५—'साधक'-श्रेणीमें आनेके बाद भगवान्‌के मिलनेमें देर नहीं होती। मोक्षकी इच्छा तथा मोक्षकी प्राप्ति प्रायः समान समयमें होती है। भगवान्‌से मिलनकी अनन्य तीव्र इच्छा जग जाय और भगवान् न मिलें—यह हो नहीं सकता।

६—सच्चे अर्थमें 'साधक' बननेका क्रम यह है कि पहले उसे जगत्‌का वास्तविक रूप अनुभव होता है अर्थात् जगत् उसे अनित्य, क्षणभङ्गुर, सुखरहित, दुःखरूप, दुःखालय, दुःखयोनि स्पष्ट प्रतीत होता है; तब उससे मनमें वैराग्य हो जाता है। इसके पश्चात् उसे षट्-सम्पत्ति—शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा एवं समाधानकी प्राप्ति होती है। इसके बाद मोक्षकी इच्छा जगती है और मोक्षकी इच्छा अनन्य तथा तीव्र हुई कि तत्काल मोक्षकी प्राप्ति हुई। इस कसौटीपर हम अपनेको कसकर देखें कि अभी हमारी क्या स्थिति है।

७—साधनामें वही प्रवृत्त होता है, जो जगत्‌से निराश हो जाता है—चाहे वह निराशा ज्ञानजनित हो, चाहे असफलताके दुःखजनित।

८—साधकको चाहिये कि वह केवल अपना सुधार करनेकी चेष्टा रक्खे। इसके लिये अपनेको देखना आरम्भ कर दे। जहाँ अपनेको देखना आरम्भ हुआ कि दूसरोंके दोष दीखने बंद हो जायँगे। फिर, दोष रहते हैं, रखनेसे। अतएव उन्हें निकालनेकी बराबर चेष्टा रक्खे, उन्हें प्रकाशित करता रहे तथा दूसरोंके बताये दोषोंको अपनेमें मान ले। इससे दोष निकलनेमें बड़ी सुविधा होती है।

९—भक्तिके स्वाँगसे कुछ नहीं होता, अन्तर भक्तिके रंगमें रँगना चाहिये।

१०—अपनेको सुखी रखना अपने हाथ है अर्थात् सबको मान दे, सबके मानकी भूखको भरता रहे और अपने मानकी भूखको मिटाता जाय तो मनुष्य सुखी हो जायगा।

११—जागतिक बीज नष्ट हो जाते हैं, पर 'कर्मबीज' नष्ट नहीं होते। हम अच्छा कार्य करेंगे तो देर-सबेर हमें अच्छाई मिलेगी ही। इसी प्रकार बुरे कर्मके परिणामस्वरूप हमें बुराई—दुःख प्राप्त होगा ही। हमारे किसी बुरे कर्मके बिना कोई हमें दुःख दे नहीं सकता।

१२—जबतक भोग भगवान्‌के आसनपर बैठे हैं, तबतक भगवान्‌की प्राप्तिकी बात करना व्यर्थ है। भोगोंको इस

आसनसे उतारकर उन्हें भगवान्‌की सेवामें लगाना आरम्भ करना या उन्हें सर्वथा हटा देना—यहाँसे साधनाका आरम्भ होता है। भोग रहें, पर आराध्य होकर नहीं; भगवान्‌की सेवाके उपकरण होकर रहें, नहीं तो, चले जायँ। भोग भगवान्‌के साथ एक आसनपर बैठकर नहीं रह सकते—यह सिद्धान्त है। भोग भगवान्‌के चरणोंमें बैठकर रह सकते हैं और इसीमें उनकी सार्थकता है।

१३—भगवान्‌के दिये हुए जितने भी साधन हैं, उन सब साधनोंको निरन्तर भगवान्‌की सेवामें लगाता रहे—साधकका यह पहला काम है।

१४—मनमें जिस प्रकारके संस्कार होते हैं, उसी प्रकारके कर्मोंकी ओर प्रवृत्ति होती है। मनमें जिस भावके संस्कार नहीं हैं, उस भावकी स्मृति ही नहीं होगी। उस भावके दीखनेपर भी हम उसे ठीकसे समझ नहीं पायँगे। हीरेके संस्कार हममें नहीं हैं तो हीरा हथेलीपर रखा रहनेपर भी हम उसे हीरेके रूपमें ग्रहण नहीं कर पाते। अतएव अपने-अपने मनकी प्रवृत्तिको देखकर समझ लेना चाहिये कि पूर्वजन्मोंमें हमने किस प्रकारका कूड़ा बटोरा है।

१५—जगत्‌के दुःखोंका विनाश केवल इस ज्ञानसे होगा कि आत्मामें न दुःख है, न सुख है; वह अपने स्वरूपानन्दमें नित्य स्थित है। दुःख हमारा माना हुआ है, वह हमारी कल्पनासे प्रसूत है।

१६—शान्ति और सुख अनुकूलतामें है और अनुकूलता मनमें है, परिस्थितिमें नहीं। अतः जगत्‌की प्रत्येक परिस्थितिमें अनुकूलताकी भावना करके सुखी हुआ जा सकता है। यदि विश्वास करें तो सच्ची बात यह है कि हमारे लिये दुःख पैदा हुआ ही नहीं।

१७—भोगोंमें सुख देखकर भोगियोंकी नकल करने जाना, नये-नये दुःखोंको बुलावा देना है।

१८—वाणीमें बड़ी शक्ति है, पर हमलोग रात-दिन अनर्गल बोलते रहते हैं, इससे उसकी शक्ति नष्ट हो जाती है। अतएव वाणीके तीन गुणों—हित, ऋत, मित (अर्थात् हितभरी वाणी बोले, सत्य वाणी बोले एवं आवश्यकताभर बोले) का पालन करना चाहिये।

१९—मनसे भगवान्‌की कृपापर विश्वास एवं जीभसे निरन्तर भगवान्‌के नामका रटन—बस, दो ही काम करनेके हैं।

२०—जितने भी इन्द्रियके विषय हैं, सभी आपातरमणीय हैं अर्थात् ऊपरसे लुभावने हैं, पर परिणाममें संखिया मिले पक्वान्नकी भाँति प्राण हरण करनेवाले हैं। अतएव बुद्धिमानी इसीमें है कि इनके लुभावने रूपमें लुब्ध न हों।

२१—भोगोंकी कामनावाला कभी पापसे बच नहीं सकता—यह निश्चय है। भोगकामना भी रहे और पाप भी सर्वथा न हो—यह सम्भव नहीं है। पर जगत्‌में रहकर भोगोंसे सर्वथा छूटना भी सम्भव नहीं है। अतएव भोगोंको भगवान्‌की सेवामें लगा दिया जाय—वे भगवान्‌की सेवाके उपकरण होकर रहें। भोगलिप्साके स्थानपर भगवत्सेवाका भाव रहे, बस, इतना करना है।

२२—आगमें ईंधन और घी डालते जाओ, वह बुझेगी नहीं, बढ़ती जायगी। ऐसे ही आशा-कामनाकी पूर्ति होनेसे ये और बढ़ती हैं, शान्त नहीं होतीं।

२३—लघुताका भाव भगवान्‌को बहुत प्रिय है। अतएव साधक अपनेको रास्तेमें पड़े तिनकेसे भी छोटा समझे।

२४—कर्मफलमें किसीका साझा नहीं होता, अपना कर्म अपनेको ही भोगना पड़ता है। अतएव किसीके कहनेसे या किसीके लिये कभी बुरा कर्म न करे।

२५—आशा-आकाङ्क्षामें लगे जगत्‌में तीन परिणाम स्वाभाविक हैं—(१) मन चिन्ताग्रस्त रहेगा। (२) चाहे वह समष्टि-रूपमें हो, चाहे एकान्तमें, विनाशका भय सदा बना रहेगा अर्थात् जो है, वह मिट न जाय—यह भय एवं (३) चिन्ता और भयकी निवृत्तिके लिये भोग-कामनाका आश्रय। भोगकामना विवेकको हर लेती है—उचित-अनुचितका विचार नष्ट हो जाता है और नरकोंमें ले जानेवाले कर्म होते रहते हैं।

२६—जो साधना करता है, उसे प्रचारकी आवश्यकता नहीं है। प्रचारसे वृत्ति बाह्य हो जाती है। प्रचारका काम आचार्योंका है। जो रास्ते चलता है, उसका काम प्रचार करना नहीं है, रास्ता चलना है। उसका चलना ही प्रचार है। कारण, मनुष्य जैसा बनता है, वैसी ही शिक्षा अपने आचरणद्वारा स्वतः देता है।

२७—जहाँ दूसरोंको वैसा बनानेका प्रश्न है, वहाँ अभिमान है। साधकको दूसरोंके बनने-बिगड़नेकी चिन्ता छोड़कर स्वयं बनना चाहिये। वह जिस चीजको, जिस विचारको, जिस क्रियाको ठीक समझे, उसे अपने जीवनमें ग्रहण करे—उतारे।

२८—हमारे विश्वासकी कमीसे ही हमारी साधनामें कमी बनी है। अड़चनें हमें पक्का बनानेके लिये आती हैं। बस, आवश्यकता इसकी है कि हम जिस चीजको ठीक समझें, मनमें निश्चय करके उसे अपने जीवनमें ग्रहण कर लें, कहें-सुनें नहीं। अच्छी चीजको दृढ़तासे पकड़ लें, अपने जीवनमें उतार लें।

२९—जिस क्षण भगवान्‌की स्मृति हमारे मनमें उदय होने लगे, समझना चाहिये 'हमारा भाग्य चमकने लगा है' और जब स्मृति जग जाय तो समझना चाहिये—'भाग्य चमक गया है'।

३०—दूसरोंके दोषोंको न देखकर गुणोंको देखे—इसमें अपनी भलाई है। दूसरोंके दोष-गुण दोनोंके चिन्तनसे विरत होकर निरन्तर भगवान्‌के नाम-गुण-सुधाका पान करता रहे—यह सर्वोत्तम है।

३१—वाणीका यह दुरुपयोग है कि परचर्चा, पर-निन्दा, व्यर्थ-चर्चामें उसका उपयोग हो। अतएव वाणीके द्वारा व्यर्थ-चर्चा, पर-चर्चा, असत्य-चर्चा न हो—यह सावधानी रक्खे। वाणीको निरन्तर भगवान्‌का नाम लेनेमें लगाये रखना चाहिये। अभ्यास होनेपर अपने-आप काम करते हुए भी जीभके द्वारा नामजप होता रहेगा। जीभके द्वारा नामका छूटना जीभसे होनेवाले बड़े भारी लाभसे वञ्चित होना है और यह बड़ा अनर्थ है।

३२—वाणीको भगवान्‌के नाममें लगा दे। कम-से-कम जितनी बात, जब, जिस रूपमें बोलनी आवश्यक हो, उतनी ही उस रूपमें बोले। बाकी समयमें अपनेको मौन-सा करके भगवान्‌के नामका जप करता रहे। जीभसे भगवान्‌का नाम लेता रहे और अपने कानोंद्वारा उसे सुनता रहे—यह मानसिक जप हो जायगा। इसका बड़ा महत्त्व है।

३३—बोलना अपने हाथमें है, कोई हमें अपनी इच्छाके ऊपरसे नहीं बुला सकता। यदि हम कम बोलें तो थोड़े दिनोंमें लोग समझ लेंगे कि यह 'मनहूस' व्यक्ति है, वे अपने आप आना बंद कर देंगे। वाणीका संयम साधनामें बहुत सहायक होता है।

३४—वाणीका संयम करनेका एक ही उपाय है—भगवन्नाम-जप एवं स्वाध्यायको वाणीका विषय बना ले। जीभके लिये भगवान्‌के नामका जप ही एकमात्र काम रह जाय, दूसरे किसी भी कामके लिये उसमेंसे समय निकालना पड़े। जो व्यक्ति इस प्रकारका जीवन बना लेता है, वह जहाँ रहता है, वहीं उसके द्वारा जगत्‌को एक बहुत बड़ी चीज अपने-आप अनायास ही मिलती रहती है।

३५—साधकको चाहिये कि वह व्यर्थ बात कहनेमें गूँगा हो जाय, व्यर्थकी बात सुननेमें बहरा हो जाय, भगवान्‌के धामको छोड़कर कहीं जानेमें पङ्गु हो जाय और भगवान्‌की सेवाका काम छोड़कर विषय-सेवाके काममें लूला बन जाय। इन चार बातोंका जितना पालन उसके द्वारा होगा, उसकी साधनामें उतनी ही प्रगति होगी।

३६—प्रकृतिके सौन्दर्यका दर्शन भगवान्‌के सौन्दर्यका दर्शन करनेके लिये अवश्य करें, कोई आपत्ति नहीं, पर प्रकृतिके सौन्दर्यका दर्शन यदि भोगके लिये करेंगे तो नष्ट हो जायँगे।

३७—जो विषयी जन-समूह है, उससे अरति करे, प्रीति न करे; उसे देखने-मिलनेकी इच्छा न करे। विषयी जन-समूहमें प्रीति भोगोंकी प्रवृत्तिको उत्पन्न करती है, कारण, भोगोंकी इच्छा संक्रामक होती है।

३८—जगत्‌को देख-देखकर, जगत्-चर्चा सुन-सुनकर व्यर्थके संस्कार मनमें भरना बड़ा अनर्थकारी है। साधकको इससे बचना चाहिये।

३९—इस विज्ञापन या प्रचारकी आवश्यकता नहीं है कि 'मैं साधक हूँ'। साधना स्वाभाविक होती है, वह जीवनमें उतरती है। उसके विज्ञापनकी आवश्यकता नहीं, उसको गुप्त रखनेकी आवश्यकता है। दूसरे, जो करे वह मनसे करे, ठीकसे करे।

४०—जीवनको साधनामय बनाये। समय बीता जा रहा है। समय रहते-रहते जीवनको भगवान्‌में लगा दे।

४१—मनसे भगवान्‌का चिन्तन, वाणीसे भगवान्‌के नामका जप-कीर्तन और शरीरसे होनेवाली प्रत्येक क्रियामें भगवान्‌की सेवाकी भावना—चेष्टा करके जीवनमें इसे अपना लेना है।

४२—बोलनेका संयम हो जाय तो बहुत-से संयम अपने-आप आ जाते हैं। इससे अनेक विपत्तियाँ, बाधाएँ अपने-आप टल जाती हैं।

४३—जीभ स्थूल अङ्ग है, कर्मेन्द्रिय है, पर यदि यह भगवान्‌के साथ लगी रही तो यह जीवनको खींच ले जायगी और जीवनके अन्तमें भगवान्‌का नाम आया कि काम बना। अतएव जीभके द्वारा निरन्तर भगवान्‌के नाम-जपका अभ्यास करे। भगवान्‌का नाम परम मधुर है, अभ्यास छूट जानेसे इसका स्वाद नहीं आता। जहाँ नाम लेते-लेते स्वाद आना आरम्भ हुआ कि फिर जीभ इसे छोड़ेगी ही नहीं।

४४—जीभको भगवान्‌के नाम-जपका अभ्यास होनेके बाद मनसे सोचते रहनेपर और हाथसे काम करते रहनेपर भी जीभसे नाम अपने-आप निकलता रहेगा। सारे शास्त्रोंका, सत्संगका फल यही है कि 'भगवान्‌के नाममें रुचि हो जाय'। जीवनमें यही करना है।

४५–जैसा संग होता है, मनुष्य वैसा बनता चला जाता है। साहित्यका संग, देखनेकी चीजका संग, खान-पानकी चीजका संग, कपड़े-लत्तेका संग, रहन-सहनका संग—इन सब संगोंका प्रभाव जीवनपर पड़ता है। अतएव ये सब संग शुभ हों, भगवान्‌के साथ जोड़नेवाले हों—यह आवश्यक है।

४६–जिसके मनमें सत् विचार है, वही संत है। जिसके मनमें भगवान् बसते हैं, भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाले विचार बसते हैं,—वही संत भगवद्भक्त है। ऐसे व्यक्तिका संग 'सत्संग' है। जिसके द्वारा, जिसके संगसे हमारे जीवनमें सत् न आवे, बुरी वृत्ति आवे, वह हमारे लिये दुःसंग है। उससे सदा सावधान रहना चाहिये।

४७–भगवान्‌के चरणोंमें जिसका मन लगा है, वह 'वैष्णव' है। उसका संग करे, उसकी आज्ञाका अनुसरण करे। वैष्णव सेवा नहीं चाहते, वे तो सेवा करते हैं। वैष्णवजनके वचनोंका अनुसरण करना, उनके जीवनके आदर्शोंका अनुसरण करना वैष्णव-सेवा है।

४८–भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम करानेवाला जो कुछ है, वह 'सत्संग' है। जो भगवान्‌के चरणोंकी प्रीतिको हटा दे, वह अवैष्णव-सेवन है—दुस्संग है और सर्वथा त्याज्य है—'दुःसङ्गः सर्वथैव त्याज्यः।' (नारदभक्तिसूत्र)

४९–भगवान्‌को जीवनका लक्ष्य बनाकर चुपचाप अपने जीवनका निर्माण भगवान्‌के लिये करता चले। न दिखानेके लिये कुछ हो, न कहनेके लिये। बस, जो कुछ हो, भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही हो।

५०–भगवान्‌का भक्त होकर अपने आचरणद्वारा ऐसा आदर्श स्थापित कर दे कि जगत् समझ ले कि 'भगवान्‌का भक्त ऐसा होता है'।

५१–बिजलीकी लहर आती है, पर जबतक उसके अनुकूल आधार नहीं होता है तो वह वहीं अवरुद्ध हो जाती है, आगे नहीं बढ़ पाती। ऐसे ही भगवान्‌की कृपाको ग्रहण करनेका आधार चाहिये, तब कृपा अपना प्रभाव दिखाती है। बिना आधारके भगवान्‌की कृपा टिकती नहीं, लौट जाती है। भगवान्‌की ओर मनका उन्मुख होना—भगवान्‌की चाह मनमें उत्पन्न होना भगवान्‌की कृपाको प्रकट होनेका और उसको टिकनेका आधार देना है।

काम और विश्राम

(लेखक—साधुवेषमें एक पथिक)

मानवके समक्ष पथ एक है, दिशाएँ दो हैं; एक दिशामें 'काम' है, दूसरी दिशामें 'विश्राम' है। जब मानवका अहंकार मनके साथ इन्द्रिय-द्वारोंसे विषय-सुखका आस्वादन करते हुए नाम-रूपात्मक जगत्‌का आश्रय लेता है, तब वह कामकी दिशामें है और जब कभी सुखके अन्तमें दुःख भोगते हुए अशान्त होकर शान्तिके लिये नाम-रूपके प्रकाशक सत्य परमात्माकी ओर उन्मुख होता है, वही विश्रामकी दिशा है। जबतक मनुष्य अज्ञानमें है, तबतक कामकी पूर्तिमें ही तृप्ति, संतुष्टि और शान्ति खोजता है। कालान्तरमें अतृप्त, असंतुष्ट और अशान्त होकर जब ज्ञानमें सावधान होता है, तब विश्रामके लिये समुत्सुक होता है।

मनोमय कोषके सङ्गी अहंकारको काम अत्यन्त प्यारा है। जबतक मनोमय कोष पूर्णतया जाग्रत् नहीं हो जाता, तबतक अन्नमय कोष अर्थात् देहाभिमानी अहंकारको सुखद वस्तुओंका संग्रह प्रिय होता है। अन्नमय कोषके सङ्गमें लोभकी प्रधानता रहती है, मनोमय कोषके सङ्गमें कामकी प्रबलता रहती है। विज्ञानमय कोषकी जाग्रतिमें धर्म-ज्ञानकी प्रधानता रहती है। आनन्दमय कोषके जाग्रत् होनेपर कामसे मुक्त होकर विश्राम पानेकी अभिलाषा प्रबल होती है। मनोमय कोषके द्वारा कामका भोग होता है, विज्ञानमय कोषके विकासमें बुद्धियोगद्वारा कामका सेवामें सदुपयोग होता है। विरक्त, परहितमें रत रहनेवाले, ज्ञानमें जाग्रत् महात्माके सङ्ग तथा उनकी सेवासे विज्ञानमय कोषकी जाग्रति होती है। सबके हृदयमें प्रतिष्ठित परमात्माको जानते हुए, सब प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखकर किसीको कष्ट न देते हुए तथा सम्बन्धित जनोंको मान देकर, वस्तुदान देकर प्रीतिपूर्वक सेवा करनेवाले साधकको बुद्धियोग प्राप्त होता है।

जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, वही निष्काम होता है, निष्काम ही अहिंसक होता है। प्रेमकी पूर्णताके बिना अहिंसा पूर्ण नहीं होती है, पूर्ण अहिंसामें ही पूर्ण विश्राम सुलभ होता है। जिन देहादि वस्तुओंको हमने नहीं बनाया, उनको अपनी मान लेना और उनके रचयिताको भूले

रहना हमारे द्वारा आन्तरिक हिंसा है। इस प्रकारकी हिंसाका अन्त करनेके लिये भोगाभ्यासके स्थानमें नित्य प्राप्त परमात्माके निरन्तर योगका मानसिक और बौद्धिक अभ्यास होना चाहिये। इन्द्रिय तथा मन और बुद्धिके द्वारा जो कुछ बार-बार दुहराया जाता है, वही सरल अभ्यास बन जाता है। जिस प्रकार मिले हुएको अपना माननेका अभ्यास दृढ़ हो चुका है, उसी प्रकार—'सब कुछ सृष्टिके रचयिताका ही है'—यह अभ्यास भी दृढ़ हो सकता है। सकामी मिले हुएको अपना मानकर मोह-ममतासे ग्रसित रहता है, निष्कामी सब कुछ प्रभुका जानकर प्राप्त शक्ति-सम्पत्तिद्वारा सेवाके लिये उल्लसित रहता है। विशेष पुण्य-प्रयत्नके द्वारा शारीरिक सौन्दर्य, स्वास्थ्य, सुयश-सम्पत्तिको प्राप्त करना सकामीके पुरुषार्थकी सिद्धि है। ज्ञानमें असङ्ग होकर, शान्त रहकर, आत्मस्थ होकर निर्भय-निश्चिन्त स्थितिमें विश्राम पाना निष्काम प्रेमीके पुरुषार्थकी सिद्धि है। अज्ञानमें तन-बल, धन-बल, जन-बल और अधिकार-बल कामसिद्धिके साधन हैं। ज्ञानमें प्रभुकृपासे सुलभ होनेवाले श्रद्धा-बल, वीर्य-बल, स्मृति-बल, समाधि-बल और प्रज्ञा-बल विश्रामकी पूर्णताके साधन हैं। कामकी सीमामें श्रम-ही-श्रम है, प्राप्त कुछ नहीं होता; कामकी सीमा पार करते ही विश्राम-ही-विश्राम है, अपनी गाँठका खोना कुछ भी नहीं होता। प्रकृतिकी परिधिमें काम है, परमात्मारूपी केन्द्रमें परम विश्राम है। काममें जो कुछ मिला है, उसका भोग है; विश्राममें जिससे सब कुछ मिला है, उसका नित्य योग है।

स्वतन्त्रता—स्वाधीनतासे परतन्त्रता—पराधीनतामें ले जानेवाला तथा चिन्मयतासे विरुद्ध जडतामें आबद्ध करनेवाला काम है। योगसे विमुख बनाकर भोगमें आसक्त करनेवाला तथा शक्तिके केन्द्रसे परिधिके चक्रमें नचानेवाला और सत्यसे विमुख बनाकर अनित्यमें अनुरक्त करनेवाला यह काम ही है। मनका संयोगी सुखोपभोगद्वारा कामकी पूर्ति चाहता है, बुद्धियोगी साधक सेवामें शक्ति-सम्पत्तिका सदुपयोग करते हुए निष्काम होकर विश्राम प्राप्त करता है।

संत सावधान करते हैं कि जबतक आप अपना काम पूरा करनेमें ही सुख मानते रहेंगे, तबतक आपके भीतर कामका अन्त ही नहीं होगा, कामका भोगी सदा रोग-शोकसे घिरा रहेगा। यदि आप भोगके अन्तमें रोग-शोकसे मुक्त होना चाहते हैं तो अपने कामसे विरक्त होकर दूसरोंके काम पूरे करनेमें यथासम्भव शक्तिका उपयोग करते रहें। जो दूसरोंके हित, सुविधाकी पूर्ति अर्थात् दूसरोंका काम पूरा करते हुए संतुष्ट—प्रसन्न रहता है, उसका अपना कोई काम नहीं रह जाता है, वही कामके बन्धनसे छूटकर विश्रामका अधिकारी होता है। जो दूसरोंका काम बिगाड़कर अपना काम बनाता है, वह मानव-आकृतिमें 'दानव' है, जो अपना काम छोड़कर दूसरोंकी कार्यपूर्तिमें सहायक होता है, वह मानव-आकृतिमें 'साधु' है।

जीवात्मा और परमात्माके योगमें कामजनित संयोग ही बाधक बनता है, कामके द्वारा भोग प्राप्त होता है, विश्रामके द्वारा योगानुभव सुलभ होता है। अविवेकी साधक अपने आगे कामको रखकर राम—परमात्माकी खोज करते हैं, विवेकी साधक अपने आगे राम—परमात्मतत्त्वका अनुभव करते हुए दूसरोंके कामकी खोज करते हैं अर्थात् दूसरोंके काम आते रहते हैं। अशुद्ध अन्तःकरण सकाम होता है; साधनाके द्वारा जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, वह निष्काम हो जाता है। मिले हुए तन-धन-परिवारको जो अपना मान लेता है, उसीका अन्तःकरण मोह, लोभ और अभिमानके द्वारा अशुद्ध होता है। अशुद्ध अन्तःकरण सकाम होनेके कारण हिंसक होता है। काम दो प्रकारका होता है—धर्मयुक्त और अधर्मयुक्त। धर्मयुक्त काममें विश्रामकी ओर गति होती है, अधर्मयुक्त काम शोकधाममें ले जाता है। अधर्मयुक्त कामका परिणाम आसक्तिकी दृढ़ता है, तृष्णाकी प्रबलता है।

जो मनुष्य धनोपार्जन करते हुए धर्मका ध्यान नहीं रखते; धनका संचय करते रहते हैं, पर दान नहीं करते, वे ही वृद्धावस्थामें भी तथा धन न रहनेपर भी लोभी बने रहते हैं। जो मनुष्य सुखोपभोग अथवा अधिकार-भोगमें धर्म-मर्यादा नहीं रखते, वे ही वृद्धावस्थामें शक्ति और पदाधिकार छिन जानेपर भी सुखके कामी और अधिकारके अभिमानी बने रहते हैं। अधर्मपूर्वक धन कमानेवाले, पदाधिकार पाकर कर्तव्यका पालन न करनेवाले, किसी वस्तु अथवा व्यक्तिके स्वामी बननेवाले—धन, अधिकार, वस्तु-व्यक्तिके दास ही बने रहते हैं, वे स्वतन्त्र—स्वाधीन नहीं हो पाते। जबतक मनुष्य अज्ञानमें रहता है, तबतक अविवेकपूर्वक अधर्मयुक्त कामका भोगी और लोभ, क्रोध, मोह और अभिमान आदि विकारोंद्वारा मानस रोगी बना रहता है। जब साधक ज्ञानमें सावधान रहकर विवेकद्वारा अधर्मयुक्त कामोपभोगके दुष्परिणाम, दुर्गतिको देखने लगता है, तब वह धर्मका ध्यान रखकर धनद्वारा दान करता

है; पदाधिकारद्वारा सेवा-सहायता करता है; दूसरोंसे सुख पानेकी दरिद्रता छोड़कर दूसरोंको सुख प्रदान करनेमें तत्पर रहता है तथा सदा परहितमें ही शक्ति, सम्पत्ति और योग्यताका उपयोग करता है। धर्मप्रेरित काम जडतासे चेतनाकी ओर, देहसे आत्माकी ओर, मृत्युसे मुक्तिकी ओर, पापसे पुण्यकी ओर, अधिकार-लोलुपतासे कर्तव्यपरायणताकी ओर तथा पतनसे उत्थानकी ओर मोड़ देता है। कभी-कभी मनुष्य अधर्मयुक्त कामके परिणाम तथा अपनी दुर्गति-दुर्बलता देखकर सद्गतिसे निराश हो जाता है; उसके लिये अनुभवी आचार्य विनाशी नाम-रूपोंके पीछे रहनेवाले अविनाशी आत्मा—परमात्माकी शरण लेकर भजन करनेकी प्रेरणा देते हैं। जो कामासक्त अविवेकवश धन, मान, संयोग-भोगके लिये मिले हुए तन, मन, बुद्धि आदि साधनोंद्वारा आजीवन श्रम-ही-श्रम करता रहता है, वही विवेक जाग्रत् होनेपर नित्य विश्रामके लिये उन्हीं मिले हुए साधनोंद्वारा परमात्माका भजन करने लगता है। अहंकारकी वासना, कामना और तृष्णाकी पूर्तिके लिये जो कुछ किया जाता है, वह सब भोग है; परम प्रभुकी नित्य योगानुभूतिके लिये सर्वहितकारी प्रवृत्ति ही भगवद्भजन है। इस प्रकारका भजन करनेवाला साधक घोर पापी होनेपर भी शीघ्र ही पुण्यवान् धर्मात्मा हो जाता है और परम प्रभुकी उपासनाद्वारा 'काम'का अन्त कर 'परम विश्राम'को प्राप्त होता है।

काममें मृत्युका भोग करना होता है; विश्राममें सदा रहनेवाले जीवनकी उपलब्धि होती है। काममें विनाशीके सङ्ग भोग चलता है, विश्राममें अविनाशीका सङ्ग रहता है। जहाँ कामनाएँ शान्त होती हैं, संकल्पोंकी निवृत्ति होती है, विचारोंकी लहरें नहीं उठतीं हैं, वहीं विश्राम होता है। ज्ञानमें शान्त होनेपर अपने लिये विश्राम और दूसरोंके लिये श्रम आवश्यक होता है। विश्रामका अर्थ देहसे निष्क्रिय होना नहीं है, अहंकृतिसे—संकल्पसे शून्य होना है; अन्तर चेतनामें शान्त रहकर जो कुछ भीतर-बाहर हो रहा है, उसे द्रष्टा होकर, साक्षी रहकर देखना है, असङ्ग रहना है।

गाँधी-जीवन-सूत्र

[पीड़ पराई जाणे रे]

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

गाँधी, मोहनदास करमचंद गाँधी वैष्णव था।
उसका जन्म वैष्णव-परिवारमें हुआ था।
उसके पिता वैष्णव थे। माँ भी वैष्णव।

माँ रोज हवेली—वैष्णव-मन्दिर—जातीं। बिना पूजा-पाठके कभी भोजन न करतीं। चातुर्मासका व्रत करतीं। आत्मकथामें गाँधीने लिखा है—

माँ कठिन-से-कठिन व्रत शुरू करतीं और उन्हें निर्विघ्न पूरा करतीं। लिये हुए व्रतोंको बीमार होनेपर भी कभी न छोड़तीं। ऐसे एक समयकी मुझे याद है कि जब उन्होंने चान्द्रायणका व्रत लिया था। व्रतके दिनोंमें वे बीमार पड़ीं, पर व्रत नहीं छोड़ा। चातुर्मासमें एक बार खाना तो उनके लिये सामान्य बात थी। इतनेसे संतोष न करके एक चौमासेमें उन्होंने तीसरे दिन भोजन करनेका व्रत लिया था। लगातार दो-तीन उपवास तो उनके लिये मामूली बात थी। एक चातुर्मासमें उन्होंने यह व्रत लिया था कि सूर्यनारायणके दर्शन करके ही भोजन करेंगी। उस चौमासेमें हम बालक बादलोंके सामने देखा करते कि कब सूरजके दर्शन हों और कब माँ भोजन करें। चौमासेमें अकसर सूर्यके दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं। मुझे ऐसे दिन याद हैं कि जब हम सूरजको देखते और कहते—'माँ, माँ, सूरज दीखा और माँ उतावली होकर आतीं, इतनेमें सूरज छिप जाता और माँ यह कहती लौट जातीं कि 'कोई बात नहीं। आज भाग्यमें भोजन नहीं है' और अपने काममें डूब जातीं।

× × ×

और पिताजी?

उनकी धार्मिक शिक्षा नहींके बराबर थी, पर मन्दिरोंमें जानेसे और कथा आदि सुननेसे जो धर्म-ज्ञान असंख्य हिंदुओंको सहज-भावमें मिलता रहता है, वह उन्हें प्राप्त था।

पिताजीके अन्तिम कालकी बात है।

वे बीमार पड़े। अंग्रेज डाक्टरने सुझाया कि शस्त्रक्रिया

ही रोगका एकमात्र इलाज है। शस्त्रक्रिया बंबईके एक प्रसिद्ध सर्जनद्वारा होनेको थी, पर पिताजी शस्त्रक्रिया कराये बिना ही बंबईसे लौट आये। वे अधिक जीनेकी आशा छोड़ चुके थे।

कमजोरी बढ़ती गयी और ऐसी स्थिति आ पहुँची कि प्रत्येक क्रिया बिस्तरपर ही करना जरूरी हो गया। लेकिन उन्होंने आखिरी घड़ीतक इसका विरोध ही किया और परिश्रम सहनेका आग्रह रक्खा।

गाँधी लिखता है 'वैष्णव-धर्मका यह कठोर शासन है। बाह्य शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है, पर पाश्चात्त्य वैद्यक शास्त्रने हमें सिखाया है कि मल-मूत्र-विसर्जनकी और स्नानादिकी सब क्रियाएँ बिस्तरपर लेटे-लेटे सम्पूर्ण स्वच्छताके साथ की जा सकती हैं और रोगीको कष्ट उठानेकी जरूरत नहीं पड़ती। जब देखो तब उसका बिछौना स्वच्छ ही होगा। इस तरहसे की गयी स्वच्छताको मैं तो वैष्णव-धर्मका ही नाम दूँगा। पर उस समय स्नानादिके लिये बिछौना छोड़नेका पिताजीका आग्रह देखकर मैं आश्चर्य-चकित ही होता था और मनमें उनकी स्तुति किया करता था।'

× × ×

तो यह थी गाँधीकी पारिवारिक भूमिका।

वैष्णवधर्मपर माताकी जैसी अटूट श्रद्धा, पिताकी भी कुछ कमी नहीं।

गाँधीका कहना था कि 'मैं वैष्णव-सम्प्रदायमें जन्मा था, इसलिये हवेलीमें—वैष्णव-मन्दिरमें जानेके प्रसंग बार-बार आते थे, पर उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई। हवेलीका वैभव मुझे अच्छा नहीं लगा। हवेलीमें चलनेवाली अनीतिकी बातें सुनकर मन उसके प्रति उदासीन बन गया। वहाँसे मुझे कुछ भी न मिला।

पर जो हवेलीसे न मिला, वह मुझे अपनी धाय रम्भासे मिला। मुझे भूत-प्रेत आदिका डर लगता था। रम्भाने मुझे समझाया कि इसकी दवा रामनाम है। मैंने रामनाम जपना शुरू कर दिया। यह जप बहुत समयतक नहीं चला, पर बचपनमें जो बीज बोया गया, वह नष्ट नहीं हुआ। आज रामनाम मेरे लिये अमोघ शक्ति है। मैं मानता हूँ कि उसके मूलमें रम्भाबाईका बोया हुआ बीज है।'

× × ×

इस प्रकार वैष्णव-सम्प्रदायके आचार-विचार गाँधीको बचपनसे मिले। समय पाकर वे धीरे-धीरे परिपुष्ट होने लगे। बादमें जब गाँधीके हृदयमें धर्मसम्बन्धी मन्थन होने लगा, भिन्न-भिन्न धर्मोंका उसने विशद अध्ययन किया और वह इस दिशामें आगे बढ़ा तो उसे लगा कि 'अन्यत्र कहीं भटकनेकी जरूरत ही नहीं। हिंदूधर्ममें और सनातन हिंदूधर्ममें उसकी सारी जिज्ञासाओंका समाधान प्रस्तुत है।'

गाँधी अपनेको 'सनातनी हिंदू' कहने लगा। और नरसीका यह भजन तो गाँधीके हृदयका हार ही बन गया, उसका जीवन-सूत्र ही बन गया—

वैष्णवजन तो तेने कहिये
जे पीड पराई जाणे रे।
पर-दुःखे उपकार करे तोंय
मन अभिमान न आणे रे॥
सकळ लोकमां सहुने वंदे
निंदा न करे केनी रे।
वाच काछ मन निश्चळ राखे
धन धन जननी तेनी रे॥
सम दृष्टि ने तृष्णा त्यागी
परस्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले
परधन नव झाले हाथ रे॥
मोह माया व्यापे नहि जेने
दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे।
रामनाम शुं ताळी लागी
सकळ तीरथ तेना तनमां रे॥
वणलोभी ने कपटरहित छे
काम-क्रोध निवार्यां रे।
भणे 'नरसैंयो' तेनुं दरसन करतां
कुळ एकोतेर तार्यां रे॥

वैष्णव कौन है ? वैष्णव किसे कहना चाहिये ?

वैष्णव वह है जो परायी पीर जानता है। पराया दुःख, पराया दर्द समझता है।

परायी पीर समझनेका अर्थ है—उस पीरको मिटानेका जी-जानसे प्रयत्न करना, उस दुःख-दर्दको दूर करनेका सच्चे हृदयसे प्रयत्न करना।

परंतु इतना ही नहीं।

वैष्णव दूसरोंके दुःखमें उपकार करनेपर भी मनमें उसका कोई घमंड नहीं करता, अहंकार नहीं करता कि मैंने अमुकका दुःख-दर्द मिटानेका प्रयत्न किया है। अमुककी सेवा की है। मुखसे तो कहनेकी बात ही क्या, मनमें भी ऐसा विचार नहीं लाता।

वैष्णव किसीकी निन्दा नहीं करता। सभीकी वन्दना करता है। सभीको अपनेसे ऊँचा, अपनेसे श्रेष्ठ समझता है। वैष्णवका तन, मन, वचन निश्चल रहता है, अडिग रहता है। धन्य है उसकी जन्मदात्री माँ।

वैष्णव सबको एक दृष्टिसे, समदृष्टिसे देखता है। किसीको ऊँचा, किसीको नीचा, किसीको पवित्र, किसीको पापी—ऐसा नहीं मानता।

वैष्णवके मनमें किसी वस्तुकी तृष्णा नहीं रहती। तृष्णा और आसक्तिका वह त्याग कर देता है।

वैष्णव परायी स्त्रीको माताके समान पूज्य और पवित्र मानता है। कामवासना उसके पास नहीं फटकती।

वैष्णव सदा सत्य बोलता है। उसकी जिह्वासे झूठ बात कभी निकलती ही नहीं।

वैष्णव पराया धन कभी छूता नहीं। वैष्णवको न तो मोह सताता है न माया, उसके मनमें सांसारिक पदार्थोंके लिये तीव्र वैराग्य समाया रहता है। किसी भी वस्तुमें उसकी आसक्ति नहीं रहती। किसीके भी प्रति उसके मनमें राग-द्वेष नहीं रहता।

वैष्णव आठ पहर चौंसठ घड़ी 'रामनाम' जपता रहता है। प्रतिक्षण प्रभुसे उसकी लौ लगी रहती है। वह स्वयं तीर्थस्वरूप बन बैठता है। उसका सारा शरीर पवित्र हो जाता है।

वैष्णवमें न तो लोभ रहता है, न कपट। काम और क्रोधसे वह पूरी तरह छुटकारा पा लेता है।

नरसी भगतका कहना है कि ऐसे वैष्णवके दर्शनसे इकहत्तर कुल तर जाते हैं।

× × ×

तो वैष्णवकी पहली पहचान है—पराया दुःख-दर्द समझना। दरिद्रनारायणसे तादात्म्य स्थापित करना वैष्णव होनेकी पहली शर्त है।

गाँधीने पराया दुःख-दर्द समझनेके लिये ही तो अपना सारा जीवन अर्पित कर रक्खा था।

खादी माने क्या ?

गरीबोंसे तादात्म्य।

अस्पृश्यता-निवारण माने क्या ?

अछूतोंके साथ, उपेक्षितोंके साथ तादात्म्य।

साम्प्रदायिक एकता माने क्या ?

जन-जनके साथ, हर धर्मके माननेवालोंके साथ तादात्म्य।

शराबबंदी माने क्या ?

मजदूरोंके साथ, शराबकी चपेटमें आकर बर्बाद होनेवाले व्यक्तियोंके साथ तादात्म्य।

आर्थिक समानता माने क्या ?

गरीबोंके साथ, भूखों-नंगोंके साथ तादात्म्य।

स्त्रियोंकी उन्नति माने क्या ?

समाजके इस पीड़ित, शोषित और उपेक्षित अङ्गके साथ तादात्म्य।

विधायक कार्यक्रम माने क्या ?

गरीबी, बेकारी, अज्ञान और गंदगीसे बिल्लाते त्रस्त समाजके साथ तादात्म्य।

गाँधीने देखा कि हमारा देश, हमारा समाज हर तरहके बन्धनोंमें जकड़ा है। उसमें न आत्मबल रह गया है, न नैतिक बल। कायरता, बुजदिली, गरीबी, बेकारी, अज्ञान, गंदगीसे वह पीड़ित है। सचाई और ईमानदारीका कहीं नाम नहीं। अन्याय, अत्याचार, शोषण और दोहनका चारों ओर बोलबाला है। सरकार विदेशी है, जिसका एक ही लक्ष्य है—भारतका शोषण और दोहन। जनता मूक है, पीड़ित है। अन्यायका विरोध करनेकी उसमें हिम्मत नहीं, क्षमता नहीं।

गरीबों, पीड़ितों, उपेक्षितोंकी बात पूछनेवाला कोई नहीं। राजा और रईस, जमींदार और ताल्लुकेदार गरीबोंको ही सताते हैं। उन्हींकी कमाईपर गुलछर्रे उड़ाते हैं और सरकारकी जी-हुजूरी करते हैं। सारा शासनतन्त्र गरीबोंको सतानेपर ही कमर कसे हुए है। सारा आर्थिक तन्त्र गरीबोंको दिन-दिन गरीब बनाता चल रहा है। सारा सामाजिक

तन्त्र अपने पिछड़े वर्गको—हरिजनोंको दिन-दिन सताता चल रहा है।

सत्यका कोई पुजारी कबतक आँख मूँदकर बैठा रहता ? कबतक वह असत्यका चारों ओर नग्न ताण्डव देखा करता ? गरीबोंको, उपेक्षितोंको, अभावग्रस्तोंको शोषण, दोहन, अन्याय और अत्याचारकी चक्कीमें पिसते देखा करता ?

वह उठ खड़ा हुआ।

कमर कसकर उठ खड़ा हुआ।

उसे लगा कि उसने जो आदर्श, जो लक्ष्य अपने समक्ष रक्खा है, जो जीवनसूत्र बनाये हैं, उनकी पूर्तिके लिये उसे आगे बढ़ना ही होगा। मूक साक्षी होकर बैठना कायरता है, हिंसा है, असत्य है। सत्यका साधक सत्यकी प्रतिष्ठाके लिये कृत-संकल्प हो उठा। सत्यके आग्रहके लिये उसने अपना शङ्ख फूँक दिया।

× × ×

वैष्णवकी सबसे बड़ी पहचान है—'परदुःख-कातरता'। वैष्णवका अर्थ है—आत्मशुद्धि और नीतिमय जीवन; अहिंसा और सत्य।

गाँधीने वैष्णव-परिवारमें जन्म पाया। उसे माता-पितासे वैष्णवके संस्कार मिले। वे संस्कार समय पाकर परिपुष्ट हुए।

परिणाम ?

परिणाम हमारी आँखोंके सामने है।

गाँधीने देखा कि चारों ओर वेदना, दुःख, शोक, हाहाकार ही तो दीख रहा है। सारे देशवासी दीन-दुखियोंकी श्रेणीमें पहुँच चुके हैं। न खानेको अन्न है, न पहननेको वस्त्र। मकान या तो टूटा है या छप्पर है तो उसपर घास नहीं। जीवनकी अनिवार्य आवश्यकताओंकी ही पूर्तिका कोई ठिकाना नहीं, फिर अन्य आवश्यकताओंकी पूर्तिका प्रश्न ही कहाँ उठता है।

ऐसी स्थितिमें वैष्णव क्या करे ?

दुखियोंका, पीड़ितोंका, गरीबोंका दुःख-दर्द उसे बुरी तरह कचोटने लगा। उसने उनकी सेवाके लिये अपने-आपको अर्पित कर दिया। सेवाकी कठिन कसौटीपर उसने अपनेको कस-कसकर खरा सोना बना लिया।

सच्चे अर्थमें वह 'वैष्णव' बन गया।

× × ×

वैष्णव घट-घटमें प्रभुके दर्शन करता है। मानवमात्रकी सेवा, प्राणिमात्रकी सेवा उसकी साधना होती है। हर प्राणीसे वह प्रेम करता है।

और जब यह स्थिति होती है, तब ऐसा व्यक्ति पीड़ित मानवताके साथ एकाकार होनेमें ही जीवनकी सार्थकता मानता है।

गाँधीने अपनी 'आत्मकथा'की पूर्णाहुति करते हुए लिखा है—

'सत्यसे भिन्न कोई परमेश्वर है, ऐसा मैंने कभी अनुभव नहीं किया। सत्यमय बननेका एकमात्र मार्ग अहिंसा है। सत्यका सम्पूर्ण दर्शन सम्पूर्ण अहिंसाके बिना असम्भव है।

'ऐसे व्यापक सत्यनारायणके प्रत्यक्ष दर्शनके लिये जीवमात्रके प्रति आत्मवत् प्रेमकी, चरम आवश्यकता है। और, जो मनुष्य ऐसा करना चाहता है, वह जीवनके किसी भी क्षेत्रसे बाहर नहीं रह सकता। यही कारण है कि सत्यकी मेरी पूजा मुझे राजनीतिमें खींच लायी है। जो मनुष्य यह कहता है कि धर्मका राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नहीं है, वह धर्मको नहीं जानता, ऐसा कहनेमें मुझे संकोच नहीं होता, और न ऐसा कहनेमें मैं अविनय करता हूँ।'

× × ×

ऐसा व्यक्ति, ऐसा वैष्णव जो कुछ करता है, उसमें धर्मकी ही दृष्टि रहती है। यों भी हम देखें तो सारा जीवन एक है, समग्र है। उसके टुकड़े नहीं किये जा सकते। जीवनका इतना भाग धार्मिक है, इतना आध्यात्मिक, इतना भाग आर्थिक है, इतना भाग राजनीतिक या सामाजिक—जीवनके इस प्रकारके टुकड़े न तो किये जा सकते हैं, न करने ही चाहिये। जीवन समग्र है। भिन्न-भिन्न कार्य उसके भिन्न-भिन्न अङ्ग हैं, परंतु किसी कार्यको उससे पृथक् नहीं किया जा सकता। धर्मको अर्थसे, अर्थको राजनीतिसे, राजनीतिको समाजशास्त्रसे, समाजशास्त्रको न्यायसे, नैतिकतासे अलग नहीं किया जा सकता। इसलिये जब जीवनपर दृष्टि डालनी होगी तो समग्र दृष्टिसे ही उसका चिन्तन करना उपयुक्त होगा।

तभी तो गाँधी कहता था—

जबतक मैं सारी मानव-जातिके साथ एकता सिद्ध न कर लूँ, तबतक मैं धार्मिक जीवन व्यतीत नहीं कर सकता और यह मैं तबतक नहीं कर सकता, जबतक मैं राजनीतिमें भाग न लूँ। आज मनुष्यकी सारी प्रवृत्तियाँ एक अविभाज्य वस्तु बन गयी हैं। आप सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक कार्यको एक दूसरेसे असम्बद्ध करके बिल्कुल अलग-अलग विभागोंमें बाँट नहीं सकते। मैं मानवीय प्रवृत्ति-से अलग किसी धर्मको नहीं जानता। उससे अन्य सब प्रवृत्तियोंको नैतिक आधार मिलता है, जो और किसी तरहसे नहीं मिलता और जिसके बिना जीवन 'निरर्थक शोरगुल' बन जाता है।

स्पष्ट है कि जीवनके 'वाटर टाइट कम्पार्टमेण्ट' नहीं बनाये जा सकते। उसे खण्ड-खण्ड करके न तो देखा ही जा सकता है और न देखना ही चाहिये। वैष्णवजनकी अनिवार्य शर्तके अनुसार गाँधी जब 'पीड़ पराई' देखने गया, तो उसे विवश होकर राजनीतिमें कूदना ही पड़ा। गरीबी और बेकारी, शोषण और दोहनकी आर्थिक समस्याएँ उसके सामने आ खड़ी हुईं। इन सारी मुसीबतोंका एकमात्र कारण ब्रिटिशराज है—यह देखकर गाँधीको उस राजकी समाप्तिके लिये राजनीतिमें आना पड़ा। बिना उस क्षेत्रमें आये पीड़ितोंकी पीड़ा दूर ही नहीं की जा सकती—ऐसा महसूस करते ही गाँधीने निश्चय कर लिया कि मुझे देशकी धार्मिक और आर्थिक, सामाजिक और नैतिक दुरवस्थाको दूर करनेके लिये इस क्षेत्रमें आगे आना ही पड़ेगा।

सदाका स्वामिभक्त, राजभक्त मोहनदास करमचन्द गाँधी ब्रिटिश सरकारका कट्टर-से-कट्टर दुश्मन, कड़ा-से-कड़ा विद्रोही बन बैठा।

पर राजनीतिमें कूदकर भी गाँधीने धर्मका, सत्यका, अहिंसाका, नीतिका अञ्चल नहीं छोड़ा। कहाँ राजनीति और कूटनीति और कहाँ सचाई और ईमानदारी। जो राजनीति कलतक चालबाजी, धोखेबाजी, असत्य और छल-प्रपञ्चकी मूर्तिमान् प्रतीक मानी जाती थी, उसी राजनीतिमें गाँधीने सत्य और अहिंसाकी, सचाई और ईमानदारीकी प्रतिष्ठा की।

'नथिंग इज अनफेयर इन लव एण्ड वार।'

'प्रेममें और युद्धमें कोई बात अनुचित नहीं मानी जाती।' 'विरोधीको परास्त करनेके लिये छल, प्रपञ्च, झूठ और बेईमानी करना भी बुरा नहीं माना जाता।' गाँधीने इस कहावतको उलट दिया। उसने लड़ाइयाँ लड़ीं, पर सीना खोलकर लड़ीं। विरोधीको ललकारकर, उसके अन्याय और अत्याचारका पर्दाफाश करके लड़ीं। उसे बताकर लड़ीं—अमुक दिन अमुक स्थानपर अमुक व्यक्ति तुम्हारे अन्यायका विरोध करेगा। तुम्हारी गोलियोंका, तुम्हारी लाठियोंका सामना करेगा। वह खुद मरनेको तैयार रहेगा, पर तुम्हारे ऊपर हाथ नहीं छोड़ेगा।

इस सादगी पै कौन न बलि जाय अय खुदा।
लड़ते हैं मगर हाथमें तलवार ही नहीं॥

अफ्रीकासे लेकर भारततक गाँधीकी सारी लड़ाई, सत्याग्रहकी अहिंसात्मक लड़ाई विश्वमें अपना सानी नहीं रखती। कारण, इन धर्मयुद्धोंमें शुद्धतम साधनोंका, सत्य और अहिंसाका ही सतत पालन किया गया। धर्म और नीति ही उसका मूल आधार-स्तम्भ है।

इस प्रकार गाँधीने राजनीतिको एक नया मोड़ दिया। गाँधीने अर्थनीतिको भी एक नया मोड़ दिया। गाँधीने समाजनीतिको भी एक नया मोड़ दिया। कहीं कोई दुराव नहीं। कहीं कोई छिपाव नहीं। कहीं छल नहीं, कहीं प्रपञ्च नहीं। सर्वत्र खुली पुस्तक सामने है। अन्यायका विरोध है, अत्याचारका विरोध है, पर मजा यह कि अन्यायी और अत्याचारीपर व्यक्तिशः कोई वार नहीं। पापका विरोध है, पापीका विरोध नहीं।

क्यों?

इसीलिये कि गाँधी 'पीड़ पराई जाणे रे।'

गाँधी अंग्रेजी शासनके गलत तरीकोंका विरोध करता था, पर मजाल क्या कि किसी अंग्रेजका बाल भी बाँका करनेकी वह कल्पना करे।

भारतके क्रान्तिकारी भी ब्रिटिश सत्ताको समाप्त करना चाहते थे। बम और पिस्तौलकी उनकी पद्धतिका गाँधी खुला आलोचक था। वह सोच भी नहीं सकता था कि किसी अंग्रेजकी हत्या की जाय। आखिर उसके भी तो वैसी ही मायालु पत्नी होगी, जैसी हमारे भाइयोंकी। उसके भी तो वैसे ही मासूम बच्चे होंगे, जैसे हमारे! उन्हें कष्ट पहुँचानेका हमें क्या अधिकार! हम मर सकते हैं, आत्म-बलिदान कर सकते हैं, पर हमारे हाथोंसे किसीपर किसी भी

स्थितिमें कोई हमला नहीं होगा, कोई वार नहीं होगा, कोई आक्रमण नहीं होगा।

यह था 'पीड़ पराई जाणे'का रहस्य !

× × ×

गाँधीका यह जीवन-सूत्र मानवको ऊपर उठाता है। उसे अहिंसा और प्रेमकी शिक्षा देता है। सत्य और न्यायके, नीति और करुणाके मार्गपर अग्रसर करता है। गरीबों और दुखियोंके आँसू पोंछनेके पुनीत कर्तव्यमें लगाता है। यहाँ दुखीसे दुखी, पतितसे पतित, पापीसे पापीको हृदयसे लगानेकी बात है।

जरूरत है इस बातकी कि हम भी इस पराई पीड़को जानें। गाँधीकी भाँति हम भी इसे अपना जीवन-सूत्र बना लें।

'पराई पीड़' जाननेका अर्थ क्या है !

उसका अर्थ है—'अहिंसा'।

अहिंसा माने क्या ? अहिंसा माने प्रेम। सर्वाङ्गीण प्रेम, सर्वग्राही प्रेम।

अहिंसा माने हैं—किसीको न सताना। किसीको कष्ट न पहुँचाना। मनसे, वचनसे, कर्मसे भी किसीके भी—प्राणिमात्रके अनिष्टका चिन्तन न करना।

अहिंसाका साधक प्रत्येक व्यक्तिसे, प्रत्येक प्राणीसे प्रेम करेगा। हर प्राणीकी सेवा करेगा। हर जीवके दुःखको मिटानेके लिये अपना सर्वस्व न्योछावर करेगा।

अहिंसाका यह शास्त्र अत्यन्त व्यापक है, अत्यन्त सूक्ष्म है और इतना कठिन है कि तलवारकी धारपर चलनेके समान है। इसके लिये चित्तको सर्वथा शुद्ध करना होगा। राग और द्वेष, माया और ममता, घृणा और अहंकारके रहते अहिंसाकी साधना हो नहीं सकती।

गाँधीने अहिंसा-शास्त्रको अत्यन्त व्यापक रूप दिया था। उसके पहले अहिंसा केवल व्यक्तिगत जीवनमें ही आचरणकी वस्तु मानी जाती थी, पर गाँधीने उसे सामाजिक स्वरूप भी प्रदान किया।

अहिंसाके साधक, अहिंसाके जिज्ञासु समय-समयपर गाँधीके सामने तरह-तरहकी शङ्काएँ व्यक्त किया करते थे। गाँधीने २५ जून १९६२ को यरवदा-मन्दिरसे बड़े अच्छे ढंगसे बताया कि अहिंसाका पालन कैसे किया जा सकता है—

'सर्पको मारें या नहीं ?' 'स्त्रीके ऊपर बलात्कार हो रहा हो, तब आक्रमणकारीको मारें या नहीं ?' 'खेतमें जीव मरते हैं यह जानते हुए भी हल चलायें या नहीं ?'—अहिंसाका उपासक इन प्रश्नोंको हल करनेमें न लगे। इन गुत्थियोंको जब सुलझाना होगा, तब वे अपने-आप सुलझ जायँगी। इस भुलावेमें पड़ना अहिंसाको बिसर जानेके बराबर है।

अहिंसाके पालनका जिसको उत्साह हो, वह अपने अन्तरमें और अपने पड़ोसियोंको देखे। यदि उसके मनमें द्वेष भरा हो तो समझे कि वह अहिंसाकी पहली सीढ़ीपर भी नहीं चढ़ा। अपने पड़ोसी, साथीके साथ वह अहिंसाका पालन न करता हो तो वह अहिंसासे हजारों कोस दूर है।

इसलिये रोज सोते समय वह अपने आपसे पूछे कि 'आज मैंने अपने साथीका तिरस्कार किया ? उसको खराब खादी देकर खुद अच्छी ली ? उसे कच्ची रोटी देकर खुद पकी हुई ली ? अपने काममें चोरी करके साथीके ऊपर बोझ डाला ? आज मेरा पड़ोसी बीमार था, उसकी तीमारदारी करने नहीं गया ? प्यासे बटोहियोंने मुझसे पानी माँगा, मैंने नहीं दिया ? मेहमान आये, उनका नमस्कारसे भी सत्कार न किया ! मजदूरका तिरस्कार किया, उसके ऊपर बिना विचारे काम लादता रहा ! बैलको पैना मारता रहा ! रसोईमें भात कच्चा था, इससे खीझा !'—ये सारी बातें भारी हिंसा हैं। इस तरह नित्यके व्यवहारमें हम स्वाभाविक रीतिसे अहिंसाका पालन न करें तो दूसरे विषयोंमें हम अहिंसाका पालन करने लायक ही न होंगे या दूसरी बातोंमें उसका पालन करते हों तो उसकी कीमत बहुत कम होगी या कुछ भी न होगी। अहिंसा प्रतिक्षण काम करनेवाली प्रचण्ड शक्ति है। उसकी परीक्षा हमारे प्रतिक्षणके कार्यमें, प्रतिक्षणके विचारमें हो रही है। जो कौड़ीकी फिक्र करेगा, उसकी कौड़ी सलामत ही है; पर जिसने कौड़ीकी परवा नहीं की, उसने कौड़ी भी खोयी और कौड़ीतो उसकी थी ही नहीं।'

यह आत्मविश्लेषण ही गाँधीके इस जीवन-सूत्रको हृदयंगम करनेका सरलतम साधन हो सकता है। आइये, हम इसे अपना पाथेय बनायें।

पञ्चवक्त्र

(लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी)

'पञ्चवक्त्रः परमेश्वरः।'

'परमात्मा पाँच मुखवाला है।'

आपके कितने मुख हैं ?

प्रश्न आपको अटपटा लगा ? पूछनेका कारण है। आप उसी परमात्माके पुत्र हैं और उसने मनुष्यको अपने अनुरूप ही बनाया है।

चौंकिये मत—आपके भी पाँच मुख हैं।

मुख वह, जिससे भोजन किया जाय। आप 'गन्धका आहार किससे लेते हैं ?' 'नासिकासे।'

तो यह 'नासिका' आपका प्रथम मुख हुआ। यह 'अघोर मुख' है। हाथ ही नाकको बंद न कर दें—नाक सदा खुली रहती है। सुगन्धि आवे या दुर्गन्धि, किसीको नाक मना नहीं करती। कुछ भी—कोई भी गन्ध घोर नहीं है। सदा खुला रहनेवाला यह मुख; किंतु किसी गन्धके समीप नहीं जायगा। कोई गन्ध आवे, न आवे—यह निर्विकार। यह श्वास-प्रश्वासका माध्यम मुख है। जीवन-श्वास अघोर है। किसीसे राग नहीं, किसीसे द्वेष नहीं। किसीका आह्वान नहीं, किसीकी उपेक्षा नहीं।

भगवान् शिवका 'अघोर मुख'—नित्य खुला मुख और वह भूतत्वात्मक मुख है। गन्धकी साधना यदि साधकको अपने चमत्कारोंमें ही उलझा न ले, वह अघोर मुखका साक्षात्कार करेगा।

अघोर शंकर—समष्टिमें कहीं कुछ घोर नहीं। कुछ भी घृणा या द्वेषके योग्य नहीं। सबमें सम, सबमें निरपेक्ष प्रभु।

आपका दूसरा मुख वह मुख है, जिसे आप 'मुख' कहते हैं। वस्तुतः मुख तो रसना है। यह मुखमें रहती है—अतः मुखका नाम 'मुख' कहलाता है। सम्पूर्ण मुखमण्डलको मुख इसीलिये कहते हैं कि उसमें मुखस्वरूप पाँचों इन्द्रियाँ हैं। उनमें चार तो केवल यहीं हैं, त्वचा सम्पूर्ण देहमें व्यापक है।

आपकी जीभ एक नहीं, दो इन्द्रियोंका आधार है। इस यन्त्रके द्वारा दो इन्द्रियाँ काम करती हैं। एक ज्ञानेन्द्रिय 'रसना' और दूसरी कर्मेन्द्रिय 'वाक्'। काम दो इन्द्रियोंको करना जीभके द्वारा और जीभ मुखके भीतर बंद रक्खी गयी है। यह बंद रहनेवाला मुख है, जो आपके खोलनेपर खुलता है। आप स्वेच्छापूर्वक न खोलें तो यह बंद रहेगा।

अघोरके समीप ही यह 'ईशान मुख'। जो ईश हैं—समर्थ हैं—परमेश्वर हैं, वे भी इस मुखको बंद रखते हैं। उन्होंने आपको यह मुख आपके नियन्त्रणमें दिया है।

कर्मेन्द्रियाँ सभी नियन्त्रित हैं। आप क्या बोलें—क्या न बोलें—कब न बोलें, कब बोलें, यह आपकी इच्छा। क्या करें, क्या न करें, कहाँ जायँ, कहाँ न जायँ, मल-मूत्रका त्याग कब करें, कब न करें, यह आपके ऊपर निर्भर है। इनके द्वारा कर्म करानेमें स्वतन्त्र होनेसे ही मनुष्यको 'कर्मयोनिका प्राणी' कहा जाता है।

ज्ञानेन्द्रियोंमें केवल रसना ही मुखके बंद सम्पुटमें रक्खी गयी है। इसका अर्थ है कि मुखमें क्या डालना और क्या नहीं डालना—इस खाद्याखाद्य-विचारमें आप अपनी बुद्धिका भली प्रकार उपयोग करें, यह प्रकृति और परमेश्वर आपसे अपेक्षा करते हैं।

रसना केवल स्वाद सूचित करती है। अपने समीप कुछ रखना मुखका काम नहीं है। मुख आहार ग्रहण करता है, शरीरके पोषणके लिये। नासिकाको सुगन्धि या दुर्गन्धि न मिले तो देहका कुछ नहीं बिगड़ता। उसे केवल श्वास-प्रश्वास लेते रहना चाहिये। किंतु रसना आहार ग्रहण न करे तो, शरीर चल नहीं सकता।

परमेश्वर पञ्चमुख—पञ्चरूप हैं। वे द्रष्टा-साक्षी हैं। उन अन्तर्यामीकी दृष्टिमात्रसे प्रकृतिमें जीवन है। उन अघोरका सांनिध्य-साक्षित्व प्राप्त न रहे—जीवन दो क्षण नहीं चलेगा; किंतु वे केवल साक्षी—अघोरमुख नहीं हैं। वे ईशानमुख हैं। अहंकार प्राणीको अंधा न कर दे, वह देख सकता है कि क्षण-क्षण उसका पालन-पोषण वे प्रभु ही कर रहे हैं।

ईशान—ईश्वर; सर्वपालक संचालक होकर परमात्मा नित्य हमारे साथ है। कोई मनुष्य [कैसे भी आचरण एवं किसी भी योग्यताका जो उन्मत्त न हो, जिसमें सोचने-समझने-की योग्यता हो] मिल नहीं सकता, जिसने जीवनमें किसी न-किसी संकटकी घड़ीमें अनुभव न किया हो कि उसे किसी

अज्ञात शक्तिने सहायता दी है। भले, वह दो क्षण पीछे उसे संयोग कहकर टाल दे।

'वह केवल विपत्तिमें सहायता देता है?'

भ्रम है आपका यह। आपका पालक वही है। उसी पिताकी गोदमें उसके अमृत करका स्पर्श पाकर आपका जीवन पल रहा है। वह तटस्थ साक्षीमात्र नहीं, वह धारक एवं पालक है।

आपका तृतीय मुख है जिसे आप 'नेत्र' कहते हैं। इस मुखसे आप रूपका आहार ग्रहण करते हैं। रसना और नेत्रमें कुछ साम्य है—कुछ वैषम्य है। रसना बंद मुखमें है। आप जब इच्छा करें, तब मुखमें कुछ डालें और तब रसना उसका स्वाद बतलावे। इस प्रकार वह सम्पूर्ण नियन्त्रित द्वार है। नेत्र अर्ध नियन्त्रित हैं। ये निद्राको छोड़कर खुले रहते हैं। इन्हें आप चाहें तब बंद कर लें। आप जो न देखना चाहें, उधरसे इन्हें हटा सकते हैं।

क्या देखा जाय-क्या न देखा जाय, इसमें आपको सावधान रहना है। भगवान् तो सूर्य नेत्र हैं। सूर्यका और नेत्रका काम है प्रकाशित करना—ज्ञान देना। अब इसमें सदसद्का विचार करना आपका काम है।

रसकी साधना भी योगमें है और रूपकी ज्योतिकी साधना भी। जिह्वाका दोहन-छेदन करके, कण्ठ-कूपमें उसे स्थापित करके सहस्रारसे झरते अमृतका साधक आस्वादन करता है और शाम्भवी मुद्रा–द्वितीयादृष्टि अथवा अमादृष्टिका आलम्बन करके आज्ञाचक्रमें अवधानके द्वारा ज्योतिका साक्षात्कार करता है। यदि वह रस या ज्योतिमें ही उलझा न रह गया तो परमात्मतत्त्वकी उसे अनुभूति होती है।

'त्वचा' सर्वथा अनियन्त्रित—सर्वथा उन्मुक्त मुख है। सर्दी-गरमी, कोमल-कठोर मिलनेसे आप इसे रोक नहीं सकते। सम्पूर्ण देहमें व्याप्त यह इन्द्रिय—यह आपका स्पर्शग्राही मुख सदा खुला रहता है। यह आपके नियन्त्रणमें नहीं है। इसका संदेश है—तितिक्षा। शीत-उष्ण जो आवे, उसे सहन करो।

प्रकाश—ज्ञान आपको कौन देता है? जो ज्ञानस्वरूप है, उसके अतिरिक्त कोई ज्ञान दे सकता है! वही आपके भीतर बैठा आपको ज्ञान दे रहा है। वही आपकी बुद्धिका प्रेरक सविता देवता है। साथ ही वह सत्तामात्र—स्पर्शमात्र, अनुभवमात्र है। उसकी सत्तासे ही समस्त सत्ता है; क्योंकि साधनाकी चर्चा भी साथ चल रही है—कह दूँ कि स्पर्श-साधनाकी परम्परा प्रायः लुप्त हो गयी है। बहुत कठिन एवं कष्टसह्य यह साधना रही होगी। हम प्रिय-अप्रिय, गन्ध, स्वाद, रूप और शब्द भी सह ले सकते हैं; किंतु स्पर्श—वह सीधे ही सम्पर्कमें आनेसे बहुत ही कष्टसह्य होगा।

अत्यल्प नियन्त्रित द्वार हैं—'कर्ण'। बहुत कड़े ढंगसे आप कानोंको बंद करें, तब भी कुछ-न-कुछ शब्द भीतर पहुँच ही जायगा। यह पञ्चम द्वार सदा खुला रहता है। इस मुखसे आप शब्द ग्रहण करते हैं। नित्य शब्द वेद ही भगवान्के पञ्चम मुख हैं।

शब्द आते हैं और जाते हैं। वे आपपर तबतक कोई प्रभाव नहीं डालते, जबतक आप स्वयं उनके अर्थका ग्रहण करके उसके अनुसार अपने चित्तको अनुकूल या प्रतिकूल न करें। शब्द स्वयं कुछ नहीं करते, अतः कर्णोंपर ईश्वरने आपको नियन्त्रण नहीं प्रदान किया।

आप क्या सुनना चाहते हैं–यह सोचकर उसके अनुरूप व्यवस्था आप कर लें, यह एक बात है। संसारके शब्द कर्णमें आते रहेंगे। उनसे तटस्थ रहना सीखना है।

भगवान् ब्रह्माने वेदोंके माध्यमसे सृष्टि की। पञ्चमुख पुरारिका यह वाङ्मय मुख सृष्टिका माध्यम है। यही संसार बनाता है और यही मुक्ति देता है। अतः इन 'कर्णों' से सावधान!

नासिकामें गन्ध आयी और गयी। इन्द्रिय-लोलुप विषयीकी बात मैं नहीं करता—बात साधककी। साधकके मनमें बहुत कम संसार प्रवेश कर पाता है। नाक, जीभ या त्वचाके माध्यमसे। नेत्रोंके द्वारसे—रूप देखकर चित्तमें संसार कठिनाईसे दस प्रतिशत पहुँचता है। संसार चित्तमें पहुँचता है कर्णके माध्यमसे। सुनकर हमारे मनमें संसारके संस्कार भरते हैं। आप जो पढ़ते हैं—भले अक्षर नेत्रोंसे देखते हैं, शब्दसमूहका माध्यम होनेसे शास्त्रकार उसे भी श्रवण—सुनना ही मानते हैं।

जहाँ संसार श्रवण-मार्गसे हृदयमें प्रवेश करता है, भगवान्के प्रवेशका भी यही मार्ग है। सत्संग ही भक्ति, ज्ञान एवं मोक्षका माध्यम है।

अधिकांश संत-मत शब्द-साधनाके समर्थक हैं। कर्ण बंद करके अजपा-जपका अभ्यास करते हुए शब्दमें मनको

एकाग्र करना और इस मार्गसे बंकनाल, शून्य-शिखरादितक कुण्डलिनीको ले जाना। वीणा, वंशी, मृदङ्ग, शङ्खादिके क्रमसे अनहदनाद-श्रवण इस मार्गका लक्ष्य है और उससे अशब्दमें स्थिति मानी जाती है।

परमेश्वर पञ्चमुख और आप पञ्चमुख; किंतु एक अन्तर है। परमेश्वरमें बाह्याभ्यन्तरका भेद नहीं होता। उनमें इन्द्रिय-अन्तःकरणका भेद नहीं। वे सच्चिदानन्दघन हैं। आपकी इन्द्रियोंके और आपके मध्य मन बैठा है। यह मन ही बन्धन-मुक्तिका हेतु है।

आप परमेश्वरके पुत्र। इन्द्रियोंमें आसक्ति है नहीं। जो विषय आया—इन्द्रियोंने उसे प्रकाशित कर दिया। मनमें आसक्ति है। वह इन इन्द्रियोंके मुखसे प्राप्त विषयोंका भोक्ता बन गया है और 'यह लाओ! यह मत लाओ!' की हाय-हायमें पड़ गया है। यह मन इन्द्रिय लोलुपता छोड़े और अन्तर्मुख हो—अपने भीतर विराजमान पञ्चमुख परमेश्वरकी ओर देखे तो आप मुक्त हैं।

मन ऐसा करे कैसे?

विवेकजन्य वैराग्य और अभ्यास परमेश्वरके चरणोंमें लगानेका—निरन्तर अथक अभ्यास—साधन तो शास्त्र यही बतलाते हैं।

भगवान् पञ्चवक्त्र हैं तो दशभुज एवं दशपञ्च नेत्र भी तो हैं। उन्हें दीखता है कि शिशु कितना अवश है। उनकी भुजाएँ दसों दिशाओंमें फैली हैं। वे समर्थ स्वयं उठा ले सकते हैं अपने अङ्कमें।

शिशु अङ्कमें आनेको मचलता नहीं, केवल यह कमी है। खिलौनोंमें लग्न शिशु—खिलौने फेंककर मचल उठे—मचलना तो इसीको पड़ेगा। इतना तो इसे करना है।

'पाहि मापन्नमीश!'

इतना पुकारता तो है आपको!

पृथ्वीपर स्वर्ग-दूत

[एक प्रतीक कथा]

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी)

सायंकालका समय था। रात्रिका अँधेरा सघन होता जा रहा था। दिनभरके परिश्रमके बाद श्रमिक थके-हारे अपने घरोंको वापस लौट रहे थे। पक्षी रात्रिके लिये विश्राम-स्थलकी खोजमें थे। गोधूलि रजनीके काले अञ्चलमें छिपने जा रही थी।

एक वृद्ध ब्राह्मण एक सुन्दर युवतीको लेकर एक सम्पन्न गृहस्थके द्वारपर खड़े थे। वे द्वार खटखटा रहे थे। रात्रिमें कहीं ठहरनेकी इच्छा थी।

'क्या पुरन्ध्र इसी मकानमें रहते हैं?' उन्होंने पूछा।

'कौन-से पुरन्ध्र?'

'वे ही जो ब्राह्मणपरिवारके हैं?' एक व्यक्तिने पूछा।

'वे तो इस क्षेत्रमें प्रख्यात हैं।' वृद्धने स्पष्ट किया।

'जी हाँ, पुरन्ध्र केवल ब्राह्मण होनेके कारण ही सम्मानित नहीं हैं, प्रत्युत ज्ञान और सद्गुणोंकी दृष्टिसे भी वे महान् हैं। धर्मशील पुरन्ध्र इसी मकानमें रहते हैं। उनका परिवार हर तरह सुखी-समृद्ध और सम्पन्न है। आप ठीक ही खोजते-खोजते आये हैं।'

'ठीक है। हम उन्हींको पूछते-पूछते आये हैं।'

पथिकोंने फिर पुरन्ध्रके मकानका द्वार खटखटाया। पुनः आवाज लगायी, 'दरवाजा खोलिये। दरवाजा खोलिये।'

'आता हूँ। ठहरिये!' की आवाजसे धीरे-धीरे द्वार खुला, जैसे कली खिलकर पुष्प बन गयी हो।

एक सौम्य आकृतिके पुरुष बाहर निकले। उनके शान्त मुखमण्डलपर प्रसन्नता और संतोषकी शुभ्र आभा खेल रही थी।

पुरन्ध्र थे तो उच्च वर्गके विद्वान् और सम्पन्न ब्राह्मण, किंतु एक मेहनती किसानकी तरह वे दिनभर परिश्रम करते थे। धर्ममें उनकी बड़ी आस्था थी। अन्तरिक्षमें रहनेवाले अदृश्य देवताओंकी तरह यह प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले भू-लोकवासी ब्राह्मण-देवता उस क्षेत्रमें सबके श्रद्धापात्र थे। देवोपम गुणोंको अपने चरित्र और जीवनमें उतारनेके कारण 'सौभाग्यलक्ष्मी' उनके परिवारमें निवास करती थी।

आस्तिकताके महान् आदर्शोंके प्रति निष्ठावान् बने रहने और आत्मनिर्माणकी कठोर जीवन-साधनाके कारण

उनका यश चारों ओर फैला हुआ था। इसलिये 'यश-लक्ष्मी' भी उनके कुटुम्बमें रहने लगी थीं। उनका कुल अपने प्रेम, सौहार्द, आतिथ्यधर्म और सचाईके कारण जाना-पहचाना था। पुरन्ध्र अपनी धर्मपत्नी, पुत्र, कन्या और पुत्रवधू आदि सबको भगवान्का प्रतिबिम्ब मानकर उनका यथोचित आदर-सत्कार और सेवा करते थे। उनका कुल उस क्षेत्रमें आतिथ्य-धर्मके लिये प्रसिद्ध था। सौहार्द और सद्भावके इस पवित्र वातावरणसे आकर्षित होकर ही 'कुल-लक्ष्मी'का उनके घरमें निवास था।

इस प्रकार सौभाग्य-लक्ष्मी, यश-लक्ष्मी और कुल-लक्ष्मी—तीनों महादेवियोंके पुण्य-निवासके कारण पुरन्ध्रका परिवार धर्म, पुण्य, चरित्र और सम्पन्नताकी दृष्टियोंसे उस क्षेत्रमें प्रसिद्ध था। प्रायः अतिथि आते रहते थे। मस्तिष्ककी प्रखरता, बुद्धि, विचारधारा, तर्क-विवेचना, सूझ-बूझके कारण वे ब्राह्मणत्वके प्रतिनिधि थे।

× × ×

एक बार ईर्ष्यावश पाप और वासनाने ब्राह्मण पुरन्ध्रके चरित्रकी परीक्षा लेनेकी एक कुटिल योजना बनायी थी। असुर-जगत्के लोग अपने बुरे स्वभावके कारण सहज ही सत्पुरुषोंसे द्रोह करते हैं और उन्हें गिराने तथा उनके सुखी जीवनमें बाधा डालनेका प्रयत्न करते रहते हैं। वे चुपचाप कुछ-न-कुछ उत्पात करते ही रहते हैं। यहाँ भी वे प्रयत्नशील थे।

'पाप' बहुत दिनोंतक पुरन्ध्रके घरके चारों ओर चक्कर लगाता रहा था, पर अभीतक घुस नहीं पाया था। 'वासना' ने भी उसके परिवारमें प्रविष्ट होकर उत्पात मचाना चाहा था, पर कोई छिद्र न मिला था। पाप और वासनाके सब प्रयत्न अबतक निष्फल सिद्ध हुए थे।

इन दोनों शत्रुओंने उस सुखी परिवारके सदस्योंमें फूट, कलह और मनमुटाव उत्पन्न करनेके प्रयत्न किये थे, किंतु विवेक और सद्बुद्धिके कारण वे इन दुष्टोंके पंजेमें न आये थे। उनके कुटिल प्रयत्न अबतक चल रहे थे।

एक दिन पापको चिन्तित देख वासनाने उससे पूछा—'आप प्रतिदिन दुखी दिखायी देते हैं। क्या आप अपनी मानसिक वेदना मुझपर स्पष्ट करेंगे?'

चिन्तित मुद्रा तथा दुखी स्वरमें पापने उत्तर दिया—

'मैं पुरन्ध्रके पुण्य और पुरुषार्थको जाँचने तथा उन्हें धर्मपथसे भ्रष्ट करनेकी युक्तियाँ सोचा करता हूँ। इनके परिवारको दुखी और कलहपूर्ण बनाना चाहता हूँ; पर असफल हो रहा हूँ। आज सर्वत्र पुरन्ध्रका यशोगान हो रहा है। वह मैं सहन नहीं कर सकता।'

वासना बोली, 'जबतक इसे धर्मसे विमुख न किया जायगा, तबतक यह विपत्तियोंके जंजालमें न फँसेगा। धर्मको दृढ़तासे पकड़े रखनेवालेपर हमलोगोंका वश नहीं चलता। पर क्या इनमें कुसंस्कार सर्वथा नहीं हैं?'

'हैं क्यों नहीं? मनुष्यमें जन्मान्तरोंके कुसंस्कार और दुष्ट मनोविकार छिपे रहते हैं, पर पुरन्ध्रने उन्हें अपने वशमें कर लिया है। इसीसे वह नीचा नहीं देख पा रहा है।'

वासनाने उत्तर दिया, 'मैं आपके साथ हूँ। कोई बदला लेनेकी युक्ति सोचिये। विकट परीक्षा हो जाय।'

दोनों रातभर कूट मन्त्रणा करते रहे।

सुबह हुई। तबतक उनकी दुष्ट योजना बन चुकी थी। बड़ी कुटिल युक्ति थी।

पापके रूप अनेक हैं। वासना तरह-तरहसे परेशान करती है। पापके चंगुलमें फँसकर मनुष्य बार-बार दुःख पाता है। वासनाके भ्रमजालमें वह अपने वास्तविक लक्ष्यको भूल जाता है। उसका विवेक उसे अधर्ममें प्रवृत्त होनेसे नहीं रोक पाता।

विषयोंमें प्रवृत्तिके कारण ही प्रायः लोग पापकर्म करते हैं। पाप हमें ठगनेके तरह-तरहके रूप बनाता है। उसका मायाजाल अनायास ही समझमें नहीं आता। पता नहीं वह किसे, कब, किस रूपमें अपने पंजेमें दबोच ले!

वह सारा दिन तरह-तरह की कुमन्त्रणाओंमें व्यतीत हुआ। उन्होंने अपनी युक्ति सोच ली थी।

वे दोनों रातकी प्रतीक्षा देख रहे थे। पापकर्म प्रायः अँधेरेमें ही होते हैं। सायंकाल होते ही दोनोंने छद्मवेश धारण किये और पुरन्ध्रके पुण्य और चरित्रकी परीक्षा लेने पहुँच गये।

पापको अपना रूप बदलते क्या देर लगती! उसके पास मायाजालका विपुल भण्डार था। वह इच्छानुसार जैसा चाहे, वैसा ही वेश धारण कर सकता था।

'आओ, अब हम अपना कुटिल नाटक प्रारम्भ करें।'

वासनाने आज्ञाका पालन करते हुए कहा—

'जो आज्ञा, लीजिये योजनाके अनुसार मैं विश्वको मुग्ध करनेवाली सौन्दर्य-विभूषिता युवतीका रूप धारण करती हूँ। मेरा यह रूप-रंग पुरन्ध्र-जैसे धर्मशील ब्राह्मणको कर्त्तव्यसे विचलित करके रहेगा।'

देखते-देखते दोनों अपने रूप बदलने लगे।

क्षणभरमें उनके रूप बदल गये। वासना बदलकर एक बड़ी सुन्दरी कन्या बन गयी। उसका यह आकर्षक रूप किसीको भी अपने मोह-पाशमें फँसानेके लिये यथेष्ट था।

पापने क्षणभरमें अपना रूप बदलकर एक अति वृद्ध ब्राह्मणका छद्मवेश धारण कर लिया। उसकी कमर झुकी हुई थी, त्वचापर झुर्रियाँ थीं, केश श्वेत और दाँत टूटे हुए थे। वह एक लकड़ी हाथमें लिये कुबड़ाकर लड़खड़ाता चल रहा था।

इस प्रकार एक वृद्ध और उसके साथ एक सुन्दरी युवती! ये ही दोनों पुरन्ध्रका दरवाजा खटखटा रहे थे।

'हमें आपसे जरूरी काम है। दरवाजा खोलिये!'

× × ×

पुकार सुनकर चकित और जिज्ञासु पुरन्ध्र बाहर निकले।

'आप कौन हैं? मैं आपकी क्या सहायता कर सकता हूँ?'

'महाभाग पुरन्ध्र! आपका यशोगान सुनकर यहाँतक चले आये हैं हमलोग। हम मुसाफिर हैं। बहुत दूरसे चले आ रहे हैं। बीचमें रात पड़ गयी है। रातमें आश्रय चाहते हैं! विपत्तिमें हैं।'

'क्या विपत्ति आ पड़ी आपपर?'

'महाभाग पुरन्ध्र! मुझ वृद्ध ब्राह्मणको आज रात ही अगले गाँवमें जरूरी पहुँचना है। आप देख रहे हैं, रात्रि होनेको है। खतरा है सामने।'

'फिर मेरे घरमें—।'

'वही तो निवेदन कर रहा हूँ। ऐसे अँधेरेमें मैं अपनी युवती पुत्रीके साथ आगे यात्रा नहीं कर सकता। रास्तेमें चोर-डाकुओंका आतङ्क है। नदी-नालों और हिंसक जानवरोंका भय है। दुष्ट प्रकृतिके आदमी भी शठता कर सकते हैं।

आपसे मेरी बस, थोड़ी-सी प्रार्थना है। विपत्तिमें सहायता दीजिये...।'

'आप अपनी बात स्पष्ट नहीं कह रहे हैं।'

'मुझे मालूम है कि आप विख्यात धर्मपरायण पुरन्ध्र हैं। पुण्य और धर्मके लिये हर किसीके प्रियपात्र हैं। कोई बिना सहायताके आपके द्वारसे खाली नहीं गया है।'

'मुझे आत्मश्लाघा पसंद नहीं है। आप अपनी इच्छा संक्षेपमें कह डालें।'

'वही तो कहने जा रहा हूँ'—वृद्धने कहा। 'मैं आगे अपनी युवती कन्याको रातमें नहीं ले जा सकता। हर तरहका खतरा है। उधर मुझे जरूरी काम है, इसलिये रुक भी नहीं सकता। अपनी पुत्रीको कुछ देरतक आपके धर्मशील परिवारमें छोड़नेकी समस्या है। कृपाकर मेरे लौटनेतक इसे अपने यहाँ शरण दें। मैं जल्दी ही वापस आकर अपनी धरोहर सँभाल लूँगा।'

पुरन्ध्र थोड़ी देर सोच-विचारमें पड़ गये।

'अरे! आप किस चिन्तामें पड़ गये। यह तो छोटी-सी प्रार्थना है।'

'कुछ नहीं, यों ही कुछ सोच रहा था।'

'आप-जैसे धर्मशील व्यक्तिके चरित्रपर अविश्वासकी तो कोई गुंजाइश ही नहीं है।'

'ठहरिये, मुझे तनिक और सोच लेने दीजिये।'

पुरन्ध्रके मनमें उलझन थी। वे समस्यापर हर दृष्टिसे विचार रहे थे।

पाप फुसलाकर कह रहा था—'मेरी दुर्बल अवस्थाको देखिये। भयसे विकल होकर शरण पानेके लिये उस पुरन्ध्रके द्वारपर आया हूँ, जो पुण्य और धर्मके प्रतिनिधि माने जाते हैं। क्या अतिथिको घरसे निराश वापिस करेंगे आप?'

पुरन्ध्रके मनमें द्वन्द्व चल रहा था। वे सोच रहे थे, 'अपने द्वारपर आये हुए अतिथिकी तनिक-सी प्रार्थनाको न मानना भी धार्मिक मर्यादाके प्रतिकूल होगा। भला यह ब्राह्मणकी पुत्री कितना खा-पी लेगी? घरमें कितना स्थान ले लेगी? और फिर अधिक दिनोंकी याचना भी तो नहीं की जा रही है। सचमुच मार्गमें चोर-डाकुओं-का भय है। गुंडे युवती कन्याको परेशान कर सकते हैं। गरीब ब्राह्मण-कन्याको शरण दे देना आतिथ्य-धर्म है। धर्मकी रक्षा तो करनी ही चाहिये।'

अन्तमें उन्होंने अपना निर्णय दे दिया ।

'ठीक है ब्राह्मण देवता, आपकी भयानक परिस्थिति देखकर मैं आपके लौटनेतक आपकी पुत्रीको अपने परिवारमें रख लेता हूँ । यह मेरी पुत्री और पुत्रवधूके साथ रह लेगी ।'

प्रसन्न होकर वृद्ध बोला, 'मैं धन्य हो गया । ले बेटी, अब तू महाभाग पुरन्ध्रके यहाँ रह । मैं जल्दी ही वापस लौटूँगा ।'

इस प्रकार उस युवतीको पुरन्ध्रके परिवारमें स्थान मिल गया । पापने अपनी कुटिल योजना कार्यान्वित करनी प्रारम्भ कर दी ।

× × ×

पापकी जड़ जमते ही उसका विषवृक्ष फैलने लगा ।

वासना-सुन्दरीने परिवारमें अपना कुटिल मायाजाल फैलाना प्रारम्भ कर दिया । वह तरह-तरहके श्रृङ्गार बनाती और अपने रूप-यौवनमें पुरन्ध्रको अटकाये रखनेका प्रयत्न करती । पुरन्ध्रके शौचादिके जलसे लेकर उनके स्नान-पूजनतकका समस्त दैनिक कार्य वह कुटिल स्त्रियोचित मिथ्या प्रेमाभिनयके साथ सम्पन्न करती । वह सदैव उनके सामने ही आकर्षक भाव-भङ्गिमाओंसे अभिनय करती रहती । हर प्रकार उन्हें धर्मपथसे च्युत और पापकी ओर आकृष्ट करनेके प्रयत्न करती रहती । वह युवती पुरन्ध्रके पूजनसे निवृत्त होनेपर उनसे प्रेममिश्रित मधुर बातें करती । प्रेमकी कथाएँ सुनाती । मनमें पवित्र भाव रखते हुए भी वे उस मायाविनी वासनाके जालमें फँसकर ध्यानसे उसकी बातोंमें कुछ रस लेने लगे । पापका कुप्रभाव बढ़ने लगा । यद्यपि उनके मनमें धर्मरक्षाका भाव ही था ।

पुरन्ध्रका मन अपने मुख्य कार्यसे हटने लगा । अब उसकी प्रवृत्ति श्रमकी ओर कम होने लगी । उन्हें आलस्य और कमचोरेपनने धर दबाया । उनकी प्रसुप्त वासनाएँ और कुसंस्कार जाग्रत्-से होने लगे । आलस्य, प्रमाद कुछ-कुछ प्रकट हो गये । काममें मन न लगानेके कारण उनकी आमदनी कम हो गयी । उनकी सम्पन्नता दरिद्रतामें बदलने लगी । अब वे देरतक सोया करते । अपनी आयको संतुलित रखनेकी ओर उनका ध्यान कम होने लगा । व्यसनकी ओर भी उनकी प्रवृत्ति बढ़ी ।

एक रात पुरन्ध्र सो रहे थे । अचानक उन्हें एक विचित्र स्वप्न दीखा । उन्हें ऐसा लगा जैसे कोई दिव्य ज्योतियुक्त देवी उन्हें जगाकर कह रही हो—

'पुरन्ध्र ! अब मैं तुम्हारे घरसे असंतुष्ट होकर जा रही हूँ । बहुत दिन आनन्दसे रही, अब तुम धर्मको दूर हटाने लगे हो । अतः मैं यहाँ नहीं रह सकती ।'

'लेकिन आप कौन हैं देवी ?'

देवी जा रही थी । पुरन्ध्रने उद्विग्न होकर करुणाजनक स्वरमें फिर पूछा, 'आप कुछ तो बताइये ! क्यों जा रही हैं ?'

'मैं तुम्हारी सौभाग्य-लक्ष्मी हूँ । तुम्हारे सुख-समृद्धि और सौभाग्य मेरे निवासके कारण ही तो थे ।'

'मेरी सौभाग्यलक्ष्मी ! ओह, मैं कितना भाग्यशाली हूँ । पर······हाय, आप क्यों मुझे छोड़कर जा रही हैं देवी ? क्या अपराध हुआ है मुझसे ?' उनके स्वरमें कातरता थी ।

'तुमने वासनाको अपने घरमें आश्रय दिया है ।'

'कौन-सी वासना ?'

'मूर्ख, वह युवती छद्मरूपमें वासनाका बदला हुआ रूप ही तो है ।'

'ओह, वासनाका परिवर्तित स्वरूप ?'

'उसे परिवारमें आश्रय देनेके कारण तुम्हारा भाग्य बदलने लगा है । तुम्हारे धर्म, पुण्य, पुरुषार्थका क्षय हो रहा है । जहाँ वासनाका राज्य है, वहाँ मैं नहीं ठहर सकती ।'

'रुको, कृपा करो देवी सौभाग्यलक्ष्मी ! मैं आपको न जाने दूँगा । बिना सौभाग्यके सब व्यर्थ है ।'

जैसे ही पुरन्ध्रने सौभाग्यलक्ष्मीको पकड़नेका प्रयत्न किया कि उनके नेत्र खुल गये । देखते-देखते सौभाग्यलक्ष्मी पुरन्ध्रके घरसे निकल गयी ।

उनके जानेसे पुरन्ध्रका सौभाग्य समाप्त-सा हो गया । उनकी सम्पन्नता समाप्त होने लगी । उनका संचित यश और गौरव अब समाप्त हो चले । लोग उनके चरित्रके

सम्बन्धमें तरह-तरहकी बातें करने लगे। अनेक प्रकारकी कमजोरियाँ बताने लगे।

'पुण्य और धर्मका प्रतिनिधि पुरन्ध्र अब दुराचारी हो गया है।' कोई कहता।

दूसरा व्यङ्ग कसता, 'उसने एक युवतीको घरमें रख छोड़ा है और उससे अवैध सम्बन्ध जोड़ लिया है।'

'अब वह पापकी ओर प्रवृत्त होने लगा है।'

पड़ोसमें जितने मुँह थे, उतने ही दृष्टिकोण और उतनी ही आलोचना।

पुरन्ध्र अब भी पूजा, अर्चना, संध्या और नित्यकर्म करते थे पहले-जैसे ही। उनके मनपर वासनाका अधिकार नहीं हो पाया था। अब वे उस कन्याको संशयके नेत्रोंसे देखने लगे थे। वे उधरसे सतर्क रहनेका प्रयत्न करते थे।

पर बड़े धर्मभीरु थे वे। उसपर दया आ जानेसे, कन्याको निराश्रित बाहर भी कैसे निकालते! वे नित्य उसके पिताके आनेकी प्रतीक्षा करते रहते। उसका पिता आये और अपनी पुत्रीको सँभाल ले। उन्हें मुक्ति मिले उस जंजालसे। दूसरेकी धरोहरको कैसे फेंके? अजीब उलझन थी।

उनके नेत्रोंमें एक क्षणके लिये जरा भी दूषित भावका उदय नहीं हुआ था, किंतु भावुक भुलक्कड़ जनताको तो संतुष्ट नहीं किया जा सकता था।

कुटिल ब्राह्मण-कन्या वासना अब पुरन्ध्रके और भी अधिक समीप रहने लगी थी। वह उन्हें पापकी ओर ले जानेका अधिकाधिक यत्न करती रहती थी। वह अब और भी आकर्षक रूप, रंग और मादक, मोहक हाव-भाव प्रकट करने लगी। वह उनसे वासना उद्दीप्त करनेवाला हास्य और विनोद करती। अपने रूप, यौवन और मायाजालमें उन्हें अपने धर्म-कर्मको भुलाये रखनेका पाप-प्रयत्न करती रहती थी।

इस प्रकार मोहजाल और वासनाके कुचक्रमें कुछ सप्ताह बीत गये। उनके पाँव वासनाकी कीचड़में बुरी तरह फँस गये। दयाके कारण ही हुआ, पर वासनाको समीप रखनेके कारण उनपर असर तो हुआ ही; संदेह-दृष्टि होनेपर भी वे उसकी ओर कुछ खिंच-से गये; वह कन्या उन्हें भली मालूम होने लगी। पवित्र हेतुसे किया हुआ भी 'बुरा सङ्ग' पतन करनेवाला होता है।

एक रात फिर सोते समय स्वप्नमें एक और अपूर्व दिव्य ज्योति प्रकट हुई और बोली, 'पुरन्ध्र! उस ब्राह्मणकन्या-रूप वासनाके मायाजालमें लिप्त रहनेके कारण मैं भी तुम्हारे परिवारसे जा रही हूँ।'

'कौन हो तुम देवी?' करुणस्वरमें उन्होंने दूसरी देवीसे पूछा।

'मैं हूँ तुम्हारी यश-लक्ष्मी। मेरे ही कारण तुम्हारी प्रसिद्धि सर्वत्र फैली हुई थी। सभी तुम्हारे पुण्य और पुरुषार्थके गुणगान करते थे। मेरे ही कारण तुम यशस्वी हो धर्मक्षेत्रमें।'

'मत जाइये देवी!' करुणस्वरमें पुरन्ध्रने प्रार्थना की।

लेकिन यशलक्ष्मीने एक भी अनुनय-विनय न सुनी। वे गायब हो गयीं।

पुरन्ध्र करुणासे प्रेरित होकर रो दिये।

यश छिन जानेसे लोक-समाजमें पुरन्ध्रकी अप्रतिष्ठा होने लगी। कोई उन्हें उच्च पद न देता, उनका स्वागत-सत्कार न करता। सार्वजनिक अवसरोंपर उन्हें आमन्त्रित तक न किया जाता। और तो और, स्वयं उनके परिवारने उनकी अप्रतिष्ठा करनी शुरू कर दी। वे पृथक् हो गये। पुरन्ध्रके पास केवल वह ब्राह्मण-कन्या ही अवशेष रह गयी। वे उसके वृद्ध पिताके लौटनेकी प्रतीक्षा उत्कटतासे कर रहे थे।

एक दिन फिर उसी प्रकारकी एक दिव्य ज्योति स्वप्नमें प्रकट हुई।

'कौन हैं आप देवी!' पुरन्ध्रने सशङ्कित स्वरमें प्रश्न किया।

'मैं हूँ तुम्हारी कुल-लक्ष्मी! तुम्हारे कुलका गौरव मेरे पास था। पर इस बदनामीके कारण अब मैं तुम्हारे परिवारमें नहीं रह सकती।'

रोकते-रोकते कुल-लक्ष्मी भी पुरन्ध्रसे रूठकर चली गयी।

'कब आयेगा इस ब्राह्मणकन्याका पिता?' झुँझलाकर

पुरन्ध्र कह उठते—'वह इस मुसीबतको ले जाय, तो मेरा छुटकारा हो। मैं गिरता ही जाता हूँ।'

वे उत्सुकतापूर्वक उस ब्राह्मणकी प्रतीक्षा करते रहे। पर यह सब तो पापका मायाजाल था। वह लौटकर क्यों आने लगा? उसने तो वासनाको सदाकी सङ्गिनी बना रखनेके लिये यहाँ छोड़ा था। पर अब पुरन्ध्र सावधान हो गये थे। उनके अन्तःकरणमें तो पवित्रता थी ही।

फिर कुछ सप्ताह उसी प्रकार बीत गये।

एक रात्रिमें फिर उन्हें स्वप्न हुआ। एकाएक उन्हें एक ज्योतिपूर्ण दिव्य पुरुष घरसे बाहर निकलता-सा प्रतीत हुआ।

कई बार ऐसा ही हो चुका था। उन्होंने सोचा, इस देवपुरुषको घरसे न जाने देंगे। चाहे कुछ भी क्यों न हो। उन्होंने उनके पाँव पकड़ लिये।

श्रद्धापूर्वक उन्हें प्रणाम करते हुए वे पूछने लगे—

'भगवन्! आप कौन हैं? मेरे घरसे क्यों बाहर जा रहे हैं?'

'मैं धर्म हूँ पुरन्ध्र! तुम्हारे परिवारसे सौभाग्य, यश, और कुल—जैसी देवियाँ चली गयी हैं। अब भला, इन सबके बिना मैं तुम्हारे परिवारमें अकेला रहकर क्या करूँगा! मैं भी निकलता हूँ इस दूषित वातावरणसे।'

'नहीं, नहीं, ऐसा कदापि न होने दूँगा—मैं धर्मको न जाने दूँगा।' वे उस देवपुरुषके पाँवोंमें पड़ गये। अनुनय-विनय करने लगे।

करुणाभरे स्वर और नेत्रोंमें आँसू भरकर वे कहने लगे—'देव! बुरा न मानें। मैंने जो कुछ किया है, वह केवल आप (धर्म)की मर्यादाके लिये ही तो किया है। मैंने उस कन्याको घरमें शरण दी केवल आपके ही कारण। आपकी प्रेरणासे अतिथि-धर्मकी रक्षाके हेतु ही। मैंने अतिथि-भावनाको पाला है। वासनासे मेरा कोई सरोकार नहीं है। मेरा अन्तर आपके लिये उसी प्रकार श्रद्धापूर्ण है। मेरे हृदयमें आपका शुभ सिंहासन सदा ही सुरक्षित है। मेरे जीवनमें आपके प्रति वही विशुद्ध प्रेम और सत्कारका पवित्र भाव है। हे धर्म! आप मुझे कदापि न त्यागें। मैं धर्मके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता, मैं आपके बिना कुछ भी पसंद नहीं करता। धर्म तो सबकी रक्षा करता है। मेरी भी रक्षा कीजिये भगवन्।'

पुरन्ध्रने कसकर उस देवपुरुष धर्मके चरण जोरोंसे पकड़ लिये। धर्मराजको अच्छी तरह पता लग गया कि पुरन्ध्रमें अब भी वही धर्मरक्षाका पवित्र भाव, वही सात्त्विकता, पवित्रता, श्रद्धा और वही पुण्यकी सभी भावनाएँ हैं। केवल उनपर मायाका हल्का-सा आवरण आ गया है। उस पापके आवरणको मेरे भक्तके मनसे मुझे दूर करना चाहिये। पुरन्ध्र परीक्षामें सफल हुए।

धर्म बाहर न जा सके। चुपचाप धर्म पीछे लौट आये और पुरन्ध्रकी देहमें अन्तर्लीन हो गये।। धर्मके आते ही पुरन्ध्र फिर प्रदीप्त हो उठे। देखते-देखते उनका कायाकल्प हो उठा। उनका व्यक्तित्व चमक उठा। आशा, उत्साह, संतोष, संतुलनका उज्ज्वल प्रकाश मुखमण्डलपर दिखायी दिया।

धर्मको बाहर न जाते देखकर उनके सौभाग्य, यश और कुल-लक्ष्मियाँ फिर नयी-नयी प्रसन्नता लेकर वापस लौट आयीं। जहाँ धर्मका निवास है, वहाँ इनका रहना अनायास ही जरूरी था।

इस प्रकार पापका कुचक्र असफल हुआ। वह छद्मवेशी वासना-कन्या गायब हो गयी। धर्मके रहनेसे फिर सौभाग्य, यश और गौरव उनके साथ रहने लगे।

दृढ़व्रती पुरन्ध्र पुनः पहलेकी तरह धर्मभावनाकी नींवके कारण सौभाग्य, यश और कुलकी विभूतियोंसे परिपूर्ण हो गये। जहाँ धर्म है, वहाँ सब कुछ स्वयं ही निवास करने लगता है। धर्मको साधनेसे सब कुछ सध जाता है। धर्ममें सब कुछ सम्मिलित है।
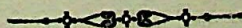
वर्णाश्रमकी ऐतिहासिकता

(लेखक—श्रीनीरजाकान्त चौधुरी [देवशर्मा], एम्०ए०, एल्-एल्०डी०, पी-एच्०डी०)

[अङ्क १० पृष्ठ १२२२ से आगे]

(५) देवता और प्रतिमापूजा—

देवता और प्रतिमापूजाका उल्लेख भासके नाटकोंमें यत्र-तत्र पाया जाता है । भासके युगमें प्रतिमापूजा प्रचलित थी, यह निस्संदेह कहा जा सकता है । इसके अतिरिक्त उनके पौराणिक नाटकोंमें जो चित्र पाये जाते हैं, उनसे प्रमाणित होता है कि महाभारत और रामायणके कालमें भी प्रतिमापूजा और शिवोपासना होती थी । अन्ततः, आजसे ढाई हजार वर्ष पूर्व भी लोकमानसमें ऐसी धारणा थी ।

देवी और शक्तिकी उपासना भी थी । जो लोग पाश्चात्त्य पुराविदोंका अन्ध अनुकरण करते हुए कहते हैं कि 'शक्तिपूजा अर्वाचीन है, किसी अनार्यजातिसे प्राप्त हुई है', उनको भासके नाटकोंमें मननके योग्य प्रचुर सामग्री प्राप्त होगी, इसमें संदेह नहीं है ।

(क) शुम्भं निशुम्भं महिषं च हत्वा
कृत्वा सुरानाहतशत्रुपक्षान् ।
अहं प्रसूता वसुदेववंशे
कात्यायनी कंसकुलक्षयाय ॥

(बाल० २ । २०)

श्रीमद्भागवतमें गोपकुमारियोंकी कात्यायनीपूजाकी कथा-का वर्णन सर्वजनविदित है ।

(ख) अहव लोहितकच्चाअनीए केरअं मम केरअं ति करिअ शिवेन पडिहत्थीकिदं भवे ।

(अथवा लोहितकात्यायन्याः सम्बन्धी मम सम्बन्धीति कृत्वा शिवेन प्रतिहस्तीकृतं भवेत् ।)(विदूषक—प्रतिज्ञा०३ । ९)

(ग) 'प्रसीदन्तु बलिशम्बरमहाकालाः । अनुमन्यतां पद्मा । जयतु भगवती कात्यायनी ।' (अवि० ३ । १३ । ४)

(घ) 'एकांशपतितो भूमावेकांशाद् दिवमुद्गतः ।'

(बाल० २ । ८)

यह विन्ध्यवासिनी योगमाया देवीके 'एकानंशा' नामका स्पष्ट उल्लेख है, इसमें संशय नहीं । हरिवंशमें उल्लेख है—

विद्धि चैनामथोत्पन्नामंशाद्देवीं प्रजापतेः ।
एकानंशां योगकन्यां रक्षार्थं केशवस्य तु ॥

(हरि०, विष्णु० ४ । ४७)

एका चासावनंशेति एकानंशा एका सती अविभक्ता ।

(नीलकण्ठ)

बालचरितमें 'कंसशिला'का भी उल्लेख हुआ है ।

'इयं कंसशिला ।' (कंस० २ । १६)

'उद्यच्छन्नेव सहसा शिलायां समपोथयत् ।'

(विष्णुपुराण ४ । ३६)

सुतरां प्रतीत होता है कि महाकवि भास हरिवंश, विष्णुपुराण और मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत 'देवीमाहात्म्य'से सुपरिचित थे ।

(ङ) बन्धनदुवारस्स अग्गदो भअवदीए अक्खिनीए ट्ठाणं तस्सि देवकय्यं कत्तुं सआ आसी ।

(बन्धनद्वारस्याग्रतो भगवत्या यक्षिण्याः स्थानं तस्मिन् देवकार्यं कर्तुं गतासीत् ।)

(प्रतिज्ञा० ३ । ५)

(च) देवउलपीठिकाए मम मोदअमल्लअं निक्खिविअ ।

(देवकुलपीठिकायां मम मोदकमल्लकं निक्षिप्य)

(विदूषक—प्रतिज्ञा० ३ । १)

(छ) 'कस्य नु खलु दैवतस्य स्थानं भविष्यति ।'

(भरत—प्रतिमा० ३ । ४)

(ज) 'कृतं देवकार्यम् ।' (प्रतिज्ञा०, चारुदत्त)

'भवतु कृतं देवकार्यम्' (अवि० ४ । १२)

(झ) 'अमभो ! पणाम मत्तेन पुइदा देवदा ।'

(आम भोः ! प्रणाममात्रेण पूजिता देवताः ।)

(प्रतिज्ञा० ३ । ३)

(ञ) 'देवदानं पणामं करिअ गहीद वीणा ।'

(देवतानां प्रणामं कृत्वा गृहीता वीणा ।)

(हंसक—प्रतिज्ञा० १ । ६)

(ट) 'देवकुले स्थापिताः शङ्खदुन्दुभयः ।'
(यौगन्धरायण—प्रतिज्ञा० ३ । ४)

शिवपूजा—

(क) 'शिवेन प्रतिहस्तीकृतं भवेत् ।'
(विदूषक—प्रतिज्ञा० ३ । २६)

(ख) 'अहं विअ शिव विदा
एदहस्सि मोदअमल्लए निरासो होदु ।'
(अहमिव शिवोऽपि तावद् एतस्मिन्
मोदकमल्लके निराशो भवतु ।)
(विदूषक—प्रतिज्ञा० ३ । ३४)

(ग) 'एदं क्खु मम मोदअमल्लअं
सिवस्स पादमूले चिट्ठइ ।'
(एतत् खलु मम मोदकमल्लकं
शिवस्य पादमूले तिष्ठति ।)
(पं० ३ । २३)

व्रत—

'अज्ज चउद्दशीं न्हाअमानो पतिवालिदाअ ।'
(अद्य चतुर्दशीं स्नापयमानः प्रतिपालितश्च ।)
(विदूषक—प्रतिज्ञा० ३ । ३)

(६) नारायण-अवतार और श्रीकृष्णका उल्लेख—

पाश्चात्त्य गवेषक और उनके अनेक अनुयायी कहते हैं कि 'शक्तिवादके समान वैष्णवदर्शन भी अर्वाचीन है। प्राचीन कालमें अवतारवाद नहीं था । राम-कृष्णमें भगवत्ता पौराणिक युगमें आरोपित हुई है। कृष्ण मूलतः ईसाकी कहानीकी नकलमात्र है। व्रजके गोपालकृष्ण और कुरुक्षेत्रके श्रीकृष्ण विभिन्न व्यक्ति हैं । इत्यादि ।'

भासके नाटकोंसे प्रतिपादित होता है कि इन लोगोंकी इस प्रकारकी उक्ति निःसार है। उसको वातुलताके अतिरिक्त कुछ भी नहीं कहा जा सकता । पाँचवीं शताब्दी (ईसापूर्व) में भी वैष्णवदर्शन और अवतारवादका अस्तित्व था। फलतः अवतारका अर्थ ही विष्णुका अवतार हो गया। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन प्रभृति समस्त अवतारोंकी कथा वेदमें वर्णित है। सुतरां वैष्णवधर्म वेदका समकालीन अर्थात् अनादि है। यज्ञके यज्ञपुरुष चिरकालसे विष्णु ही हैं— उनको जो अप्रधान देवता कहते हैं, वे सनातनधर्मके विषयका 'क-ख' भी नहीं जानते ।

भासके नाटकोंमें राम और कृष्णकी भगवत्ता बारंबार सुगम्भीर भक्तिके साथ घोषित हुई है—

शङ्खक्षीरवपुः पुरा कृतयुगे नाम्ना तु नारायण-
स्त्रेतायां त्रिपदार्पितत्रिभुवनो विष्णुः सुवर्णप्रभः ।
दूर्वाश्यामनिभः स रावणवधे रामो युगे द्वापरे
नित्यं योऽञ्जनसंनिभः कलियुगे वः पातु दामोदरः ॥
(बाल० १ । १)

नारायण ही युग-युगमें वामन, राम और कृष्णरूपमें अवतीर्ण हुए हैं। यह श्लोक महाभारतके वन० १४९ श्लोकके साथ तुलनीय है। भेद यही है कि वहाँ हनुमान्‌ने भीमको कहा है कि 'नारायण सत्ययुगमें शुक्ल, त्रेतामें रक्त, ... रमें पीत एवं कलियुगमें कृष्णवर्ण होते हैं ।'

उत्क्षिप्तां सानुकम्पं सलिलनिधिजलादेकदंष्ट्राग्ररूढा-
माक्रान्तामाजिमध्ये निहतदितिसुतामेकपादावधूताम् ।
सम्भुक्ताम्प्रीतिपूर्वं स्वभुजवशगतामेकचक्राभिगुप्तां
श्रीमान्नारायणस्ते प्रदिशतु वसुधामुच्छ्रितैकातपत्राम् ॥
(सूत्रधार—अवि० १ । १)

यहाँ वराह-अवतारका वर्णन किया गया है। 'एकातपत्रा' शब्द भासको प्रिय है ।

नरमृगपतिवर्ष्मालोकने भ्रान्तनारी-
नरदनुजसुपर्वव्रातपातालशोकः ।
करजकुलिशपाली भिन्नदैत्येन्द्रवक्षाः
सुररिपुबलहन्ता श्रीधरोऽस्तु प्रियो वः ॥
(सूत्रधार—कर्ण० १ । १)

यह नृसिंह-अवतारकी प्रशस्ति है।

एक श्लोकमें वराह, वामन और राम अवतारका वर्णन हुआ है—

मग्नेयं हि जले वराहवपुषा भूमिस्त्वयैवोद्धृता
विक्रान्तं भुवनत्रयं सुरपतेः पादत्रयेण त्वया ।
स्वैरं रूपमुपस्थितेन भवता देव्या यथा साम्प्रतं
हत्वा रावणमाहवे न हि तथा देवाः समाश्वासिताः ॥
(अभि० ३)

निम्नाङ्कित श्लोकोंमें श्रीरामचन्द्रकी भगवत्ता और माया-मनुष्यरूपका वर्णन हुआ है—

मानुषं रूपमास्थाय चक्रशार्ङ्गगदाधरः ।
स्वयं कारणभूतः सन् कार्यार्थी समुपागतः ॥

(रामके प्रति वरुण । अभि० ४ । १४)

इमां भगवतीं लक्ष्मीं जानीहि जनकात्मजाम् ।
सा भवन्तमनुप्राप्ता मानुषीं तनुमास्थिता ॥

(रामके प्रति अग्निका कथन—अभि० ६ । २८)

गीताका 'अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।' इसके साथ तुलनीय है ।

इसी प्रकार अनेक स्थानोंपर श्रीकृष्ण जो परब्रह्म हैं, मायामनुष्यका शरीर धारण करके भारावतारणके लिये पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं, यह कहा गया है ।

नमो भगवते त्रैलोक्यकारणाय ।
नारायणाय नरलोकपरायणाय
लोकालयाय कमलामललोचनाय
रामाय रावणविरोचनपातनाय
वीराय वीर्यनिलयाय नमो वराय ॥

(बालचरितमें नारदवाक्य १ । ८)

इह तु जगति नूनं रक्षणार्थं प्रजाना-
मसुरसमितिहन्ता विष्णुरद्यावतीर्णः ।

(वसुदेव—बाल० १ । ९)

'मायया शिशुत्वमागतं त्रिलोकेश्वरं प्रगृह्य'

(नारद—बाल० १ । ५ । ३)

वयमपि मनुष्यलोकावतीर्णस्य भगवतो विष्णोर्बालचरितमनुचरितुं गोपालकवेषप्रच्छन्नस्य घोषमेवावतरिष्यामः ।

नमो भगवते नारायणाय ! भगवन् ! महाविष्णो !

(सुदर्शन—बाल० १ । २७)

प्रसीदतु प्रसीदतु भगवान् नारायणः ।

(कालिय—बाल० ४ । १०)

प्रसीदतु प्रसीदतु भगवान् नारायणः । महीभारापनयनं कर्तुं जातस्य भूतले ।

(सुदर्शन—बाल० १ । ४६)

श्रीकृष्णकी व्रजधामकी समस्त लीलाओंका बालचरितमें उल्लेख हुआ है । हरिवंशमें सभीकी कथा पायी जाती है ।

पूतनावध, शकटभञ्जन, क्षीर-दधि-माखनकी चोरी, ऊखलसे बँधे हुए ही यमलार्जुनका उद्धार, प्रलम्ब-धेनुक और केशीका वध (३ । ३१—६३), इसके अनन्तर हल्लीशक (रास) नृत्य (३ । ९३—१०१) और रासलीलाका एक प्रवेशकमें वर्णन हुआ है । कृष्ण-बलराम गोपबालक और गोपकुमारियोंके साथ वृद्ध गोपजनोंके सम्मुख नृत्य करते हैं । उसमें लेशमात्र अश्लीलताको भी स्थान नहीं है, इसके पश्चात् अरिष्टवध एवं कालियमर्दनका वर्णन हुआ है ।

मथुरालीलामें रजक और कुवलयापीड हाथीका वध; मदनिका नामकी कुब्जाका ऋजुकरण, मालाकारसे माल्यग्रहण, मल्ल और कंसवध—यह सभी हैं ।

इस समस्त उल्लेखसे प्रतीत होता है कि भास हरिवंश और विष्णुपुराणके साथ सुपरिचित थे ।

नीचे उद्धृत वाक्यसे श्रीमद्भागवतके साथ भी सादृश्य परिलक्षित होता है—

पशुपकुलनिवासादानुजीव्यानभिज्ञः ।

(कृष्णके प्रति दुर्योधनकी श्लेपोक्ति—दूतवाक्य १ । ३)

'पशुपवंशशिशुत्वनाट्यम्'

(भागवत १० । १३ । ६१)

इसके साथ तुलनीय है ।

'आपीडदामशिखिबर्हविचित्रवेषः ।'

(भटवाक्य—बालचरित ५ । ३)

'बर्हापीडं नटवरवपुः' (भागवत १० । २१ । ५)

एवं 'बर्हप्रसूननवधातुविचित्रिताङ्गः ।'

(भागवत १० । १४ । ४७)

इत्यादिको स्मरण करा देता है कि नहीं ?

सुतरां यह निश्चित करना असङ्गत नहीं होगा कि ईसापूर्व ४५० वर्षके कालके हरिवंश एवं विष्णु तथा श्रीमद्भागवत महापुराण वर्त्तमान थे । (क्रमशः)

सावधान

सावधान रह, रहो देखते भाव हृदयके नित्य निरन्तर ।
हो न कभी मद-मान-दम्भ—आसुर भावोंका उदय लेश भर ॥
जगे न मनमें नाम-रूपकी पूजाका अभिलाष क्लेशकर ।
बढ़ती रहे सदा प्रभु-पद-रति, बनी रहे प्रभुकी स्मृति सुखकर ॥

गेहूँके पौधेमें रोगनाशक ईश्वरप्रदत्त अपूर्व गुण

(लेखक—श्रीचिन्तामणिजी पाण्डेय, सा० भू०, ए० एम्० टी० आई)

गेहूँका प्रयोग हमलोग सभी बारहों मास भोजनमें करते रहते हैं, पर उसमें क्या गुण है, इसपर लोगोंने बहुत कम विचार किया है। मोटे तौरसे हमलोग इतना ही जानते हैं कि यह एक उत्तम शक्तिदायक खाद्य-पदार्थ है। कुछ वैद्योंने यह भी पता लगाया है कि मुख्य शक्ति गेहूँके चोकरमें है, जिसे प्रायः लोग आटा छान लेनेके बाद फेंक देते हैं अथवा जानवरोंको खानेको दे देते हैं; स्वयं नहीं खाते हैं। हानिकारक महीन आटा या मैदा खाना पसंद करते हैं और लाभदायक चोकरसहित मोटा आटा खाना नहीं पसंद करते। फल यह होता है कि शक्तिवर्धक वस्तु न खाकर गेहूँके अंदरका शक्तिरहित गूदा (मैदा) खाते रहनेसे हमलोग जीवनभर अनेक प्रकारकी बीमारियोंसे पीड़ित रहा करते हैं। प्राकृतिक चिकित्सक लोग प्रायः चोकरसहित आटा खानेपर जोर देते हैं, जिससे पेटकी तमाम बीमारियाँ अच्छी हो जाती हैं। लोग यह जानते हैं कि २४ घंटे भिगोकर सबेरे गेहूँका नाश्ता करनेसे अथवा चोकरका हलुआ खानेसे शक्ति आती है। फिर भी लोग झंझटसे बचनेके लिये डाक्टरी दवाईके फेरमें अधिक रहते हैं; जिनके सेवनसे नयी-नयी बीमारियाँ दिनोंदिन बढ़ती जा रही हैं, फिर भी लोग चेतते नहीं हैं। स्त्रियाँ तो विशेषकर दवाकी भक्तिनी हो गयी हैं। घरमें रोज काममें आनेवाली और भी अनेक चीजें हैं, जिनके उचित प्रयोगसे अनेक साधारण बीमारियाँ अच्छी हो सकती हैं, जिन्हें कि हमारी बूढ़ी-बाढ़ी माताएँ अधिक जानती थीं, पर आजकलकी नयी स्त्रियाँ उनके बनानेकी झंझटसे बचनेके लिये बनी-बनायी दवाइयोंका प्रयोग ही ज्यादा पसंद करती हैं, फिर चाहे उनसे दिन-दिन स्वास्थ्य गिरता ही क्यों न जाय।

इसी उपर्युक्त गेहूँके सम्बन्धमें आज हम 'कल्याण' के पाठकोंको एक नयी बात सुनाना चाहते हैं—

अभी हालमें अमेरिकाकी एक महिला डाक्टरने गेहूँकी शक्तिके सम्बन्धमें बहुत अनुसंधान तथा अनेकानेक प्रयोग करके एक बड़ी पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है 'Why suffer ? Answer—Wheat Grass Manna' यह पुस्तक आपको महात्मा गांधी 'निसर्गोपचार आश्रम, पोस्ट उरुलीकांचन, जिला पूना'से मिल सकती है। मूल्य तीस रुपये हैं। इसकी लेखिका हैं, डा० एन विरामोर, D. D., N. D., P.S.D., P. W. D., M. S. D. वगैरह—उसमें उन्होंने अपने सब अनुसंधानोंका पूरा विवरण दिया है और अनेकानेक असाध्य रोगियोंपर गेहूँके छोटे-छोटे पौधोंका रस (Wheat Grass Juice) देकर उनके कठिन-से-कठिन रोग अच्छे किये हैं। वे कहती हैं कि 'संसारमें ऐसा कोई रोग नहीं है जो इस रसके सेवनसे अच्छा न हो सके।' कैंसरके बड़े-बड़े भयंकर रोगी उन्होंने अच्छे किये हैं, जिन्हें डाक्टरोंने असाध्य समझकर जवाब दे दिया था और वे मरणप्राय अवस्थामें अस्पतालसे निकाल दिये गये थे। ऐसी हितकर चीज यह अद्भुत Wheat Grass Juice साबित हुई है। अनेकानेक भगंदर, बवासीर, मधुमेह, गठियाबाई, पोलियाज्वर, दमा, खाँसी वगैरहके पुराने-से-पुराने असाध्य रोगी उन्होंने इस साधारण-से रससे अच्छे किये हैं। बुढ़ापेकी कमजोरी दूर करनेमें तो यह रामबाण ही है। अमेरिकाके अनेकानेक बड़े-बड़े डाक्टरोंने इस बातका समर्थन किया है और अब बम्बई और गुजरात प्रान्तमें भी अनेक लोग इसका प्रयोग करके लाभ उठा रहे हैं। भयंकर फोड़ों और घावोंपर इसकी लुगदी बाँधनेसे जल्दी लाभ होता है।

इस अमृत-समान रसके तैयार करनेकी विधि भी उक्त महिला डाक्टरने विस्तारपूर्वक लिख दी है, ताकि प्रत्येक साधारण मनुष्य भी इसे तैयार करके स्वयं लाभ उठा सके और दूसरे अन्य रोगियोंको भी लाभ पहुँचा सके। इस रसको लोग Green Blood की उपमा देते हैं, कहते हैं कि यह रस मनुष्यके रक्तसे ४० फीसदी मेल खाता है। ऐसी अद्भुत चीज आजतक कहीं देखने-सुननेमें नहीं आयी थी। इसके तैयार करनेकी विधि बहुत ही सरल है। प्रत्येक मनुष्य अपने घरमें इसे आसानीसे तैयार कर सकता है। कहीं इसे मोल लेने जाना नहीं पड़ता; न यह कहीं पेटेंट दवाके रूपमें

बिकती है। यह तो रोज ताजी बनाकर ताजी ही सेवन करनी पड़ती है।

इस रसके बनानेकी विधि इस प्रकार है—

आप १०–१२ चीड़के टूटे-फूटे बक्सोंमें अथवा मिट्टीके गमलोंमें अच्छी मिट्टी भरकर उनमें बारी-बारीसे कुछ उत्तम गेहूँके दाने बो दीजिये और छायामें अथवा कमरे या बरामदेमें रखकर यदा-कदा थोड़ा-थोड़ा पानी डालते जाइये, धूप न लगे तो अच्छा है। तीन-चार दिन बाद पेड़ उग आयेंगे और आठ-दस दिनके बाद बीता-डेढ़-बीता (७-८ इंच) भरके हो जायँगे, तब आप उनमेंसे पहले दिनके बोये हुए ३०-४० पेड़ जड़सहित उखाड़कर जड़को काटकर फेंक दीजिये और बचे हुए डंठल और पत्तियोंको (जिसे Wheat Grass कहते हैं) धोकर साफ सिलपर थोड़े पानीके साथ पीसकर आधे गिलासके लगभग रस छानकर तैयार कर लीजिये और रोगीको तत्काल वह ताजा रस रोज सबेरे पिला दीजिये। इसी प्रकार शामको भी ताजा रस तैयार करके पिलाइये—बस आप देखेंगे कि भयंकर-से-भयंकर रोग आठ-दस या पंद्रह-बीस दिन बाद भागने लगेंगे और दो-तीन महीनेमें वह मरणप्राय प्राणी एकदम रोगमुक्त होकर पहलेके समान हट्टा-कट्टा स्वस्थ मनुष्य हो जायगा। रस छाननेमें जो फुजला निकले, उसे भी आप नमक वगैरह डालकर भोजनके साथ खा लें तो बहुत अच्छा है। रस निकालनेके झंझटसे बचना चाहें तो आप उन पौधोंको चाकूसे महीन-महीन काटकर भोजनके साथ सलादकी तरह भी सेवन कर सकते हैं, परंतु उसके साथ कोई फल न मिलाये जायँ। साग-सब्जी मिलाकर खूब शौकसे खाइये, आप देखियेगा कि इस ईश्वरप्रदत्त अमृतके सामने डाक्टर-वैद्योंकी दवाइयाँ सब बेकार हो जायँगी; ऐसा उस महिला डाक्टरका दावा है।

गेहूँके पौधे ७-८ इंचसे ज्यादा बड़े न होने पायें, तभी उन्हें काममें लाया जाय। इसी कारण १०-१२ गमले या चीड़के बक्स रखकर बारी-बारीसे (प्रायः प्रतिदिन दो-एक गमलोंमें) आपको गेहूँके दाने बोने पड़ेंगे। जैसे-जैसे गमले खाली होते जायँ, वैसे-वैसे उनमें गेहूँ बोते चले जाइये। इस प्रकार यह गेहूँ घरमें प्रायः बारहों मास उगाया जा सकता है।

उक्त महिला डाक्टरने अपनी प्रयोगशालामें हजारों असाध्य रोगियोंपर इस Wheat Grass Juice का प्रयोग किया है; और वे कहती हैं कि उनमेंसे किसी एक मामलेमें भी असफलता नहीं हुई।

रस निकालकर ज्यादा देर रखना न चाहिये। ताजा ही सेवन कर लेना चाहिये। घंटा-दो-घंटा रख छोड़नेसे उसकी शक्ति घट जाती है और तीन-चार घंटे बाद तो वह बिल्कुल व्यर्थ ही हो जाता है। डंठल और पत्ते इतनी जल्दी खराब नहीं होते। वे एक-दो दिन हिफाजतसे रक्खे जायँ तो विशेष हानि नहीं पहुँचती।

इसके साथ-साथ आप एक काम और कर सकते हैं, वह यह कि आप आधा कप गेहूँ लेकर धो लीजिये और किसी बर्तनमें डालकर उसमें दो कप पानी भर दीजिये, बारह घंटे बाद वह पानी निकालकर आप सबेरे-शाम पी लिया कीजिये। वह आपके रोगको निर्मूल करनेमें और अधिक सहायता करेगा। बचे हुए गेहूँ आप नमक-मिर्च डालकर वैसे भी खा सकते हैं अथवा पीसकर हलुआ बनाकर सेवन कर सकते हैं, अथवा सुखाकर आटा पिसवा सकते हैं—सब प्रकार लाभ-ही-लाभ है।

ऐसा उपयोगी है यह रोज काममें आनेवाला गेहूँ। उपर्युक्त अंग्रेजी पुस्तककी लेखिकाने बहुत प्रसन्न मनसे सबको छूट दे रक्खी है कि संसारमें चाहे जो व्यक्ति इस अमृतका प्रयोग करके लाभ उठावे और लोगोंमें प्रचार करे, जिससे सब लोग सुखी हों। इसी विचारसे बम्बई या गुजरात प्रान्तमें कई धर्मात्मा लोग इसके प्रचारके लिये उतारू हुए हैं और वहाँ इस सम्बन्धकी अनेकानेक पुस्तिकाएँ प्रकाशित कर रहे हैं। ऐसे सज्जनोंमें एक हैं श्रीलाभशंकर मेहताजी, पता है—हेलर रोड, बुलसाड। (Bulsar, Gujarat P.) दूसरे हैं श्रीजमनादास चन्द्रियानीजी। पता है मलबार व्यू, चौपाटी, बम्बई—७। एक महाशयने 'ऊना जवारा—ईश्वरीय बक्षीस' नामकी एक छोटी-सी पुस्तक गुजराती भाषामें प्रकाशित की है। जिसे गुजराती जाननेवाले लोग आठ आने भेजकर मँगवा सकते हैं; पता है, 'जीवनयोग सरस्वती सदन, रामजी टेकरा, बुलसाड (गुजरात)।' इसे तीस रुपयेवाली अंग्रेजी पुस्तकका खुलासा ही समझना चाहिये।

मालूम होता है हमारे ऋषि-मुनि लोग इस क्रियाको पूर्णरूपसे जानते थे। उन्होंने स्वास्थ्यकी रक्षा करनेवाले पदार्थोंको नित्यके पूजा-विधानमें रख दिया था, जिसमें लोग उन्हें भूल न जायँ और नित्य उनका अवश्य प्रयोग करें। जैसे तुलसीदल, बेलपत्र, चन्दन, गङ्गाजल, गोमूत्र, तिल, मधु, धूप-दीप, रुद्राक्ष वगैरह-वगैरह। इसी प्रकार पूजाओंमें जौका प्रयोग और जौ बोकर उसके पौधे उगाना भी पूजाका एक विधान रक्खा था, जो प्रथा आजतक किसी-न-किसी रूपमें चली आ रही है। गेहूँ और जौमें बहुत अन्तर नहीं है। बहुत सम्भव है, जौके छोटे-छोटे पौधोंमें जीवनीशक्ति अधिक हो। और सम्भव है, इसीसे पूजामें जौको ही प्रधानता दी गयी हो, परंतु हमलोग इन स्वास्थ्यवर्धक चीजोंको केवल पूजा-की सामग्री समझकर उनका नाममात्रको प्रयोग करते हैं—स्वास्थ्यके विचारसे यथार्थ मात्रामें उनका सेवन करना हम भूल ही गये हैं।

ऐसा है यह गेहूँके पौधोंमें भरा हुआ ईश्वरप्रदत्त अमृत! समर्थ पाठकोंको चाहिये कि वे इस अमृतका सेवन कर स्वयं सुखी हों और लाभ मालूम हो तो परोपकारके विचारसे इसका यथाशक्ति प्रचार करके अन्य लोगोंका कल्याण करें और स्वयं महान् पुण्यके भागी हों।

आत्मोत्सर्ग

(लेखक—डा० एच्० पी० सराफ, एम्० बी० बी० एस्० डी० सी० एच्०)

गगनचुम्बी अट्टालिका तैयार हो गयी। अनेकानेक सौन्दर्य-प्रसाधन एवं मनोरञ्जनके विविध उपकरण लाये जाने लगे। नव-निर्मित विशाल अट्टालिका पूरे शहरमें चर्चाका विषय बन गयी।

तभी दीवालकी एक ईंटने नींवमें गड़े हुए पत्थरसे पूछा—क्यों भाई! क्या तुम्हारा मन वहाँ अँधेरेमें धरतीके नीचे पड़े-पड़े ऊबता नहीं? क्या तुम्हारी इच्छा सूर्यका प्रकाश एवं सांसारिक सौन्दर्यको देखनेकी कभी नहीं होती? तुम अपने जीवनको कोसते होओगे कि 'मैं क्यों नींवका पत्थर बन गया?'

नींवका पत्थर—नहीं, कदापि नहीं। तुम्हारी धारणा सर्वथा भ्रान्त एवं अनुचित है। मुझे इस जीवनसे पूर्ण संतोष है। बड़ी प्रसन्नता है मुझे कि मैंने अपने अस्तित्वको लोगोंकी दृष्टिसे दूर रखकर इस भव्य प्रासादके निर्माणमें सहयोग दिया है। जो दूसरोंके लिये जीता है, जीना उसीका सार्थक है। अपना अस्तित्व मिटाकर, दूसरोंके अस्तित्वको सुरक्षित रखना—यही तो सृष्टिका गौरवमय विधान है, बहन!

दीवालकी ईंट—किंतु भाई! यह कैसा जीवन कि लोग तुम्हारे इस त्याग-बलिदानको अपनी आँखोंसे देख भी न सकें। कम-से-कम तुम्हारे इस बलिदानकी चर्चा तो होनी चाहिये। लोग विशाल प्रासादकी चर्चा करते हैं, तुम्हारी नहीं। क्या पुरस्कार मिला तुम्हें इस उत्सर्गसे?

नींवका पत्थर—देखो बहन! मुझे जन-चर्चासे या जनताके द्वारा की हुई प्रशंसासे कोई सरोकार नहीं। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि बीज स्वतःको मिटाकर ही वृक्ष बन पाता है। मैं तो यहाँ जीवित भी हूँ, परंतु बीज तो पूर्णरूपेण समाप्त ही हो जाता है। कितना महान् त्याग है उसका। यदि वह धरतीपर न पड़े—अपनेको न समाप्त कर दे तो वृक्ष एवं फूल-फल कहाँसे आयेंगे? बहन! प्रत्येक महान् कार्यके लिये किसी-न-किसीको नींवका पत्थर बनना ही पड़ता है—बनना ही चाहिये। यही उसके जीवनका परम लाभ है—यही सृष्टि-क्रम है।

परमार्थकी पगडंडियाँ

जहाँतक हो सके, मालाके नियमसे एक लाख नाम-जप रोज हो जाय तो बहुत अच्छा है। पाठका क्रम भी टूटना नहीं चाहिये। अक्रोध, सत्य, सर्वत्र भगवद्दर्शन, किसीकी निन्दा न करना—इनका नियमितरूपसे पालन किया जाय तो अत्युत्तम है। रातको सोते समय भगवान्‌का चिन्तन करते हुए सोनेसे कुछ समय बाद भगवान्‌के स्वरूप तथा भगवत्-लीला-सम्बन्धी स्वप्न आने लगते हैं, जो आनन्ददायक होनेके साथ ही प्रभुके प्रति प्रेमका उदय तथा वर्धन करनेवाले होते हैं। प्रभुका स्मरण सदा बना रहे और अपना प्रत्येक कार्य केवल प्रभुप्रीत्यर्थ हो, इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये। चित्तका भगवान्‌के साथ नित्य सम्पर्क बना रहना चाहिये।

× × × ×

जहाँ हमारे मनकी नहीं होती है, वहाँ हमें मानना चाहिये कि वहाँ हमारे प्रेमास्पद प्रभुके मनकी होती है। इसलिये उसमें विशेष प्रसन्न होना चाहिये। यह सत्य है कि प्रभुमें पूर्ण समर्पण हमारा नहीं हो पाया। वह यदि हो जाता तो हमें सब अवस्थाओंमें सदा प्रसन्नता, सदा संतोष रहता। यही समर्पणका स्वरूप है। शरीर कहीं रहे, किसी भी स्थितिमें रहे, हम निरन्तर प्रभुके हाथमें हैं, उनकी मङ्गलमयी गोदमें हैं। वे कभी, किसी हालतमें हमारा साथ नहीं छोड़ते और नित्य-निरन्तर हमारा मङ्गल कर रहे हैं—इस तथ्यका दर्शन समर्पित जीवनमें होता रहता है। इससे सदा संतुष्टि, सदा प्रसन्नता रहती है। कोई भी अनुकूलता-प्रतिकूलता फिर उसे सुख-दुःख नहीं दे सकती। वह नित्य अखण्ड आनन्दमें रहता है। हमें यह निश्चितरूपसे मानना चाहिये कि हमपर प्रभुकी अपार कृपा, असीम स्नेह है। हम कभी भी उनकी सहस्र-सहस्र धाराओंमें प्रवाहित मङ्गलमयी कृपा तथा स्नेहसुधासे वञ्चित तो हैं ही नहीं, वरं सदा उसीसे सराबोर हैं। इसीसे मानना चाहिये कि—हमपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है—हम अभागे नहीं हैं, बड़े भाग्यवान् हैं। अभागा तो वह है, जो भगवान्‌को छोड़कर संसारके विषयोंमें—संसारके प्राणी-पदार्थोंमें भोग-दृष्टिसे प्रेम करता है—

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥

× × × ×

प्रतिकूलता प्रायः साधकोंको भी सहन नहीं होती है; पर असलमें तो प्रतिकूलता रहनी ही नहीं चाहिये, परिस्थिति चाहे कैसी भी हो। जब प्रेमास्पदका सुख ही अपना सुख बन जाता है, तब प्रतिकूलता अपने मनकी न होनेमें नहीं होती, प्रेमास्पदके मनकी न होनेमें ही होती है। हमें भगवान्‌को प्रेमास्पद मानकर यही भाव रखना चाहिये। पर भगवान्‌को जब हम प्रेमास्पद मान लेते हैं, तब भगवान् हमें प्रेमास्पद मान लेते हैं और वे हमारे मनकी करने लगते हैं। पर हमें तो यही निश्चय रखना चाहिये कि भगवान्‌के मनकी अनुकूलतामें ही हमें सर्वदा और सर्वत्र अनुकूलता दिखायी दे।

× × × ×

संसारके प्राणी-पदार्थोंसे न सुखकी आशासे सम्बन्ध करना है, न दुःखकी आशङ्कासे सम्बन्ध छोड़ना है। असलमें सम्बन्ध तो केवल एक प्रभुसे ही रखना है, सुख-दुःखका कोई प्रश्न ही नहीं। प्रभुका प्रेम ही सारे सम्बन्धोंका सूत्र है। जिससे प्रभु प्रसन्न हों, वह दुःख भी महान् सुख है और जिससे प्रभुकी अप्रसन्नता हो, वह महान् सुख भी नरक-दुःखसे बढ़कर दुःखदायी है। शरीर रहे या जाय, अपना-प्रभुका सम्बन्ध नित्य बना रहे।

× × × ×

भगवच्चर्चामें मन लगाना तो बहुत शुभ है, परंतु पूजा, पाठ, जप आदि कभी भी छोड़ने नहीं चाहिये। उनको तो चालू रखना तथा श्रद्धा-प्रेमपूर्वक चालू रखना आवश्यक एवं लाभदायक है। भगवत्प्रेमके लिये ये शुभ साधन छोड़े नहीं जाते, बल्कि सावधानीके साथ श्रद्धापूर्वक किये जाते हैं। हाँ! प्रेमकी मस्तीमें ये छूट जाया करते हैं—जैसे नदीसे पार हो जानेपर नाव छूट जाती है, जैसे सूर्योदय होनेपर दीपक अनावश्यक हो जाता है। अतएव पाठ, पूजा, भजन, जप—सब श्रद्धापूर्वक करते रहना चाहिये; इन्हें छोड़नेकी कल्पना भी नहीं करनी चाहिये।

× × × ×

सबके मनको सुननेवाले श्रीभगवान् हैं। वे सदा सबके पास रहते हैं हर-हालतमें और रहते भी हैं परम सुहृद्रूपमें। उनपर विश्वास करके मनुष्य अपने मनकी बात चाहे जब, चाहे जहाँ उन्हें सुना सकता है। तुम प्रभुको मनकी आँखोंसे सदा अपने पास देखते हो, प्रभुके हाथोंको अपने मस्तकपर पाते हो, उन प्रभुको ही अपने मनकी बातें—सारी बातें निःसंकोच सुनाया करो—अपनी सरल भाषामें, सरल हृदयसे। भगवान्से बात करनेमें, प्रार्थनामें किसी कलाकी आवश्यकता नहीं है—आवश्यकता है—सत्य और सरलताकी।

× × × ×

मनुष्य बड़ा कमजोर प्राणी है, उसके मनमें वासनाएँ छिपी रहती हैं। भगवान्के नामपर भी भोग-वासना जाग्रत् हो सकती है। इसलिये सदा सावधानीके साथ वासनाओंको जड़-मूलसे काटनेकी ही कोशिश करनी चाहिये। इसलिये मैं श्रृङ्गारके पद—बहुत सुन्दर होनेपर भी—उनसे डरता हूँ। वासनाओंका उभड़ आना बहुत सहज है, उन्हें दबाना बड़ा कठिन है। संसारमें भगवान्के नामपर—श्रीराधा-कृष्णकी पवित्र लीलाके नामपर—वासनाएँ उभाड़ी जाती हैं और उनकी लीलाओंका दुरुपयोग किया जाता है। यह बहुत बुरा है। मैं इससे सदा बचने-बचानेकी कोशिश किया करता हूँ। यही सलाह अपने प्रत्येक स्वजनोंको दिया करता हूँ। तुमको भी यही सलाह देता हूँ कि श्रृङ्गारके पद चाहे किसीके हों—नहीं देखने-पढ़ने-सुनने चाहिये। भगवत्प्रेमके त्यागमय आदर्शको उपस्थित करनेवाले भावोंका ही मनन करना चाहिये। परीक्षित्-सरीखे पुरुषने भी 'रासपञ्चाध्यायी' सुनकर भगवान्में दोष-भावना कर ली, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है? श्रीचैतन्यमहाप्रभु-सरीखे महान् विरक्त तथा भगवत्प्रेमके तत्त्वको समझनेवाले पुरुषोंके अतिरिक्त दूसरे लोग, जो इस प्रकारकी लीलाओंके पदोंको पढ़ते-सुनते हैं, वे या तो भगवान्में दोष देखने लगते हैं या वासनाओंके चक्रमें पड़कर श्रीराधा-कृष्णकी दिव्य लीलाओंको गंदी भौतिक क्रिया समझकर मनसे गिर जाते हैं। ये दोनों ही स्थितियाँ वाञ्छनीय नहीं हैं।

सच्चे प्रेमी कवि जिस पवित्र प्रेमराज्यमें पहुँचकर जिस बातको कहते हैं, उस राज्यमें पहुँचे बिना प्रेमी कविकी वह बात समझमें नहीं आती और उसमें खुला श्रृङ्गार स्पष्ट दिखायी देता है, जिसे पढ़-सुनकर मनुष्यकी वृत्ति पतनकी ओर जाने लगती है। 'रासपञ्चाध्यायी'के कुछ शब्द, भक्त जयदेवजीका 'गीतगोविन्द' तथा सूरदासजी आदि महात्माओंके कुछ पद भी इसके उदाहरण हैं। यद्यपि इनमें वस्तुतः कोई अश्लीलता तथा बुरी बात नहीं है, तथापि मर्यादा महत्त्वकी वस्तु है और उस मर्यादामें रहना ही उचित एवं आवश्यक है। साधकके जीवनमें मर्यादा और लोक-संग्रहका आदर अवश्य होना चाहिये। मैं तो अपनेको भी इस दिव्य प्रेमराज्यका अधिकारी नहीं मानता।

× × × ×

अपनी ओरसे भरसक पूरा प्रयत्न करना और भगवत्कृपाके बलपर ऐसा बार-बार निश्चय करना कि 'मेरा प्रयत्न अवश्य सफल होगा।' मनुष्य यही करे। फल तो श्रीभगवान्के हाथमें है। उनके

मङ्गलमय विधानके अनुसार जो कुछ रचा गया है, वही होगा; वही वस्तुतः हमारे लिये कल्याणकर होगा। भगवान्‌को स्मरण करते हुए कर्तव्य-पथपर डटे रहना चाहिये। बुद्धिमानीके साथ धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिये—न छलाँग मारनेकी कोशिश करनी चाहिये, न रुकना चाहिये। मार्ग देख-देखकर भगवान्‌के भरोसे चलना चाहिये। यदि भगवान्‌का भरोसा सच्चा होता है तो मार्गकी कठिनाइयाँ भगवत्कृपासे दूर हो जाती हैं—

'सर्वदुर्गाणि　मत्प्रसादात्तरिष्यसि।'

भगवद्विश्वास, कर्तव्यशीलता, धीरता, ईमानदारी और उत्साहको सदा अपने साथ रखना चाहिये।

× × × ×

संसारका यही स्वरूप है—यह भोगमय संसार दूरसे बड़ा सुहावना मालूम होता है; परंतु जैसे अबोध छोटा शिशु किसी काले सर्पको बड़ी कोमल वस्तु समझकर पकड़े और वह उसे डँस ले, उसी प्रकार हमलोग संसारको स्पर्श करते हैं और बार-बार उससे डँसे जाते हैं। यही मोह है। भगवान्‌ने गीतामें स्पष्ट कहा है—'इन्द्रियोंके साथ विषयोंका संस्पर्श होनेपर आरम्भमें अमृततुल्य लगता है, परंतु उसका परिणाम तो जहरके सदृश ही होता है।'

× × × ×

संसारमें इच्छाओंका कोई अन्त नहीं है और भौतिक पदार्थोंकी इच्छा अन्तमें दुःख देनेवाली होती है। इच्छा करनी चाहिये—भगवान्‌के भजनकी और भगवान्‌का प्रेम प्राप्त करनेकी। यही वास्तविक सदिच्छा है।

× × × ×

जीवको कुसङ्गका प्रगाढ़ अभ्यास है। वह अनन्त जन्मोंसे कुसङ्गमें ही रस लेता आया है, उसीका अभ्यास करता आया है। इस कारण किंचित् असावधानीसे ही, तनिक-से भी सत्सङ्गमय वातावरणसे मनके पृथक् होनेपर वह दृढ़कालीन अभ्यास अपनी ओर खींचता ही है। दृढ़ अभ्यासका अभ्यास भी इसका एक कारण है। साथ ही सत्, रज और तम—ये बढ़ते-घटते रहकर समय-समयपर अपना प्रभाव डालनेका प्रयत्न करते हैं। हम सजग रहें और भगवान्‌के चरणोंमें पहुँचनेके लिये उनके चरणोंका ही दृढ़ आश्रय लिये रहें तथा इसके लिये सदा उनसे कातर मनसे प्रार्थना करते रहें, तभी मनकी कुसङ्गदोषसे रक्षा सम्भव है। भगवान्‌की कृपापर विश्वास रखकर प्रयत्न करते रहना चाहिये।

× × × ×

भगवान्‌की कृपापर विश्वासकर जीवनका प्रत्येक कार्य यथायोग्य सुचारुरूपसे सावधानीके साथ करना और करना केवल प्रभुसेवाके निमित्त, प्रभुप्रीत्यर्थ एवं भगवान्‌का निरन्तर स्मरण रखना—आध्यात्मिक उन्नतिके लिये ये साधन परम लाभदायक हैं।

शीघ्र-से-शीघ्र आध्यात्मिक उन्नति होनेका उपाय है—शीघ्र-से-शीघ्र उन्नति होनेकी 'तीव्रतम आकाङ्क्षा'। भूख लगनेपर ही अन्नका अनुसंधान होता है और भगवान्‌की कृपासे भूखेको अन्न मिलता ही है।

× × × ×

कालकी गति रुकती नहीं। मनुष्य चाहे उस कालमें कोई विशेष लाभका काम कर लें अथवा हानिका, या यों ही प्रमाद-आलस्यमें कालको खो दे। × × × × संतोष तो आध्यात्मिक उन्नतिमें होना ही नहीं चाहिये। संतोषका क्षेत्र तो जागतिक भोगोंमें ही है, उनमें संतोष अवश्य करना चाहिये। संतोष

करनेसे ही सुखकी प्राप्ति होती है। आध्यात्मिक उन्नतिमें तो असंतोष होना ही लाभदायक होता है, जो नित्य-निरन्तर आगे बढ़ाता रहता है।

× × × ×

भगवान्‌का स्मरण करते हुए ही सारे काम करने चाहिये, जिससे चित्तमें प्रसन्नता रहे। मनमें कमजोरी नहीं लानी चाहिये। यह समझना चाहिये कि हमारी प्रत्येक कमजोरी श्रीभगवान्‌की शक्तिका आह्वान करनेवाली है। दैन्य बड़ी अच्छी चीज है, बशर्ते कि वह निराशा, असफलता, विषाद उत्पन्न करनेवाला तथा साहस नष्ट करनेवाला न हो। सच्चा दैन्य वही है, जो श्रीभगवान्‌की कृपाशक्तिको बुलाता है—भगवान्‌की शक्तिको स्वतन्त्ररूपसे कार्य करनेके लिये मार्ग देता है। इसी प्रकार दुर्बलता भगवान्‌की कृपाशक्तिको बुलानेवाली होती है। हमारी कमजोरीमें कोई ताकत नहीं है, जो भगवान्‌की कृपाशक्तिको रोक दे। इस दृष्टिसे स्वयं दीन और दुर्बल होते हुए भी मनुष्य भगवान्‌की कृपापर विश्वास करके अत्यन्त प्रबल और कठिन-से-कठिन कार्योंके करनेमें समर्थ हो सकता है।

× × × ×

भगवत्प्रेमकी ओर प्रगतिके बिना जीवनका व्यतीत होना वास्तवमें शोचनीय है। इसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये और प्रेम प्राप्त करनेकी लालसाको खूब बढ़ाना चाहिये। भगवान्‌का स्मरण अधिक-से-अधिक हो, इसका प्रयत्न भी करना चाहिये। किसी मनुष्यकी ओर न देखकर हम सभीको सर्वसमर्थ परम सुहृद् श्रीभगवान्‌के चरणोंकी ओर ही देखना चाहिये। उनके चरणोंका ही सबसे बड़ा सहारा है।

× × × ×

भगवान्‌का स्मरण मधुर तथा विशुद्ध होता रहे और भगवत्कृपापर विश्वास बढ़ता रहे—यह करना है।

दैवी सम्पत्ति, भगवान्‌में रुचि और भोगोंसे विरक्ति बढ़ती रहे तो समझना चाहिये, उन्नति हो रही है।

आसुरी सम्पत्ति, भोगोंमें रुचि और भगवान्‌में अरुचि बढ़ती हो तो समझना चाहिये कि अवनति हो रही है। यही कसौटी है।

× × × ×

यह निश्चय कीजिये—भगवान्‌की मुझपर बड़ी कृपा है, उन्होंने मुझको अपना लिया है और मैं उनकी ओर उनकी कृपासे ही बढ़ता जा रहा हूँ।

भगवान् नित्य मेरे पास रहते हैं और उनकी मुझपर अत्यन्त प्रीति है, मैं सदा उनके स्नेह-सागरमें डूबा हूँ।

मैं भगवान्‌का हो गया, इसलिये जगत्‌का मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं रह सकता।

श्रीश्यामसुन्दर नित्य-निरन्तर मुझे अपनी लीलाकी झाँकी कराते रहेंगे और मुझे भी अधिकार देंगे—लीला-परिकर बनकर लीलामें सम्मिलित होनेका।

संसारमें जब जो कुछ होगा, होता है, सब भगवान्‌का मङ्गल विधान है। मैं सब परिस्थितियोंमें भगवान्‌के मङ्गल विधानको देखूँगा और सदा प्रसन्न रहूँगा। तदनन्तर मङ्गल विधानकी बात भी मेरे मनमें नहीं रहेगी, मैं सदा प्रत्येक परिस्थितिमें इस बातको लेकर परम प्रसन्न रहूँगा कि मेरे परम प्रेमास्पद श्यामसुन्दर इससे प्रसन्न हैं। उनकी प्रसन्नता ही मेरे जीवनकी स्थिति बन जायगी। मैं कभी उन्हें और उनकी प्रीतिको भूलूँगा ही नहीं।

× × × ×

तीन विश्वास करनेकी बातें हैं—

(१) भगवान्‌ने मुझको अपना लिया है; मैं भगवान्‌का हो चुका हूँ—सदाके लिये।

(२) जब मैं भगवान्‌का हो चुका हूँ, तब मेरे सम्बन्धमें सारी चिन्ता भगवान्‌को ही है। वे ही सब सँभाल रक्खेंगे और वे जो कुछ करेंगे सो निश्चित-निश्चित मेरा मङ्गल ही करेंगे।

(३) जब मैं उनका हो गया तो मैं सदा उनका स्मरण करूँगा। मेरे चिन्तनको वे बनाये रक्खेंगे तथा मेरे मनमें प्रधानरूपसे विषयचिन्तन कभी नहीं होने देंगे।

—ये तीनों बातें उनकी कृपासे होंगी, पर यथाशक्ति ये तीन साधन अपनाने चाहिये—

(१) जहाँतक बने भगवान्‌का निरन्तर चिन्तन करना—लीला-दर्शन करना तथा उनको सदा अपने समीप समझना।

(२) उनके नाम-जपकी पूरी चेष्टा करना।

(३) उनके अनुकूल आचरणकी पूरी चेष्टा करना।

आजकी समस्याओंके समाधान

[भारतीय दर्शनके कुछ मूल तत्त्व]

(लेखक—पं० श्रीरामरूपजी शुक्ल)

भारतके पास आत्मवादी साहित्यका अगम सिन्धु है। यह ऐसा सिन्धु है कि इसकी थाह पाना किसी एक व्यक्तिके वशकी बात नहीं है। स्थिति बहुत कुछ परमात्माके परिचय-जैसी है। परमात्माका कितना भी परिचय-निरूपण या महिमा-वर्णन करें, वह सम्पूर्ण नहीं हो सकता। इसी प्रकार भारतीय वाङ्मयका कोई कितना भी अध्ययन या मनन क्यों न कर ले, वह उसका आशय सम्पूर्ण रूपमें प्रकट नहीं कर सकता।

हाँ, इस समस्त सत्साहित्यके संदेशको सार रूपमें प्रस्तुत किया जा सकता है और समय-समयपर युग-पुरुषोंने ऐसा ही किया भी है। जहाँतक सामान्य आत्मवादी पुरुषका सम्बन्ध है, वह योग-साधनकी निश्चित-निर्धारित पद्धतियों-द्वारा इस समस्त दर्शनके मूल तत्त्वोंका साक्षात्कार कर सकता है और उनके व्यवहारद्वारा अपना तथा अपने आस-पासके जनसमाजका कल्याण कर सकता है। उदाहरणके लिये, सम्पूर्ण वैदिक साहित्यका पूर्ण अवलोकन किसी एक व्यक्तिके लिये भले ही शक्य न हो, किंतु वेद-माता गायत्रीकी शरण लेकर उनकी अनुकम्पा एवं साधना-प्रसादद्वारा वह वैदिक साहित्यका सार-मर्म समझ सकता है और दूसरोंको समझाकर आत्म-कल्याणके साथ-साथ यथासम्भव अधिक-से-अधिक लोक-कल्याण भी कर सकता है।

ईश्वरका अनुग्रह ही सर्व-प्रधान तथा सब कुछ

जैसा कि सत्य-साधक सत्पुरुषोंने समझा और समझाया है, मानव-जीवनके समस्त कार्य-कलापमें ईश्वरका अनुग्रह ही सर्वप्रधान है। वही वस्तुतः सब कुछ है। उदाहरणके लिये, समस्त जैविक कार्य-व्यापार सूर्यके सहारे चलता है, और यह सूर्य स्वयंमें जीव-जगत्‌के लिये परमात्माका सबसे बड़ा अनुग्रह है। इसी प्रकार, आकाशसे लेकर पृथ्वीतक समस्त तत्त्व और ओषधि-रेतस् आदि जीवनके लिये ईश्वरके अनुग्रह-ही-अनुग्रह हैं। ये सब हैं और इनका संतुलित-समन्वित रूपमें कार्य-व्यापार चल रहा है, इसीलिये जगत् है और जगत्‌में जीवन है। आज मानव-जीवन समस्त कथित ऐश्वर्य-विभव और समस्त मात्र भौतिक उपलब्धिके बीच जो सूना सूना हो गया है, उसके मूलमें सचाई यही है कि प्रत्यह, प्रतिक्षण और प्रति पग ईश्वरके सहज अनुग्रह-को अङ्गीकार करके चलनेकी प्रवृत्तिका अभाव हो गया है। अनुग्रहकी बात तो दूर रही, स्वयं ईश्वरकी सत्ताको मानकर

जीवन-यापन करनेकी प्रवृत्ति बहुत ही घट गयी है। फिर जीवनमें मानव दुखी क्यों न हो? फिर वह सुखी कैसे हो?

भारतीय पुराणेतिहासकी अनेकानेक कथाओंमें और तीन प्रधान कथाओंमें जीवनके लिये ईश्वरके अनुग्रहकी अनिवार्यतापर ही बल दिया गया है और मात्र इसे ही जीवनके लिये कल्याणप्रद बताया गया है। श्रीदुर्गासप्तशती, रामायण और महाभारतकी तीनों ही सर्वप्रमुख कथाएँ वस्तुतः ईश्वरके अनुग्रहका ही प्रतिपादन करती हैं। असुरोंके सामने देवताओंकी एक न चली और अन्ततः शक्तिके हस्तक्षेपोंसे ही देव-पक्षकी विजय सम्भव हुई। रावणके सम्मुख ऋषि-मुनि आदि सत्पुरुषोंका केवल तपोबल काम न आया और तब राम-रूपमें भगवान्को स्वतः दुष्ट-दलन करना पड़ा। धर्म-पक्षके प्रतिनिधि पाण्डवोंका तो कौरवोंके सम्मुख बड़ा ही बुरा हाल हो गया था, और भगवान् श्रीकृष्णके पथ-प्रदर्शन तथा संरक्षणमें ही पाण्डव अन्ततः जयी हो सके।

इन कथाओं या प्रागैतिहासिक कालकी घटनाओंका सार-तत्त्व या संदेश क्या है? एक वाक्यमें यही कि भागवत-हस्तक्षेप, भगवत्कृपा और ईश्वरके अनुग्रहसे ही सत्पुरुषोंका सङ्कट टलता है, देव-पक्षकी विजय सम्पन्न होती है और आसुरी सम्प्रदायका विनाश होता है। भले आदमी दुष्टोंके सामने कहाँतक टिक सकते हैं? 'नंगा खुदासे बड़ा'—ऐसी कहावत प्रसिद्ध है। सारांश यह कि सत्पुरुष या सत्य-पक्षके लोग ईश्वरके अनुग्रहका ही सदा सहारा लें, और इस प्रकार ईश्वरके अनुग्रहसे असत्यपर सत्यकी, अधर्मपर धर्मकी अन्यायपर न्यायकी, हिंसापर अहिंसाकी विजय हो तथा मानव-कल्याण एवं लोक-कल्याण सम्पादित हो।

प्रकृतिपर विजय नहीं, आत्म-विजय

आधुनिक किंवा नास्तिक दर्शनके कुप्रभावसे एक सिद्धान्त आजकल निकला है—प्रकृतिपर विजय पानेका सिद्धान्त। तात्त्विक दृष्टिसे देखा जाय तो इससे बढ़कर अविचारपूर्ण दूसरी कोई बात नहीं हो सकती। प्रकृतिका क्षणभङ्गुर पुतला मानव प्रकृतिपर विजय क्या प्राप्त करेगा? इस विनाशकारी सिद्धान्तपर चलकर मनुष्यने इन कुछ शताब्दियों और विशेषतः विगत कुछ दशकोंमें कथित सुखके साधन बहुत संगृहीत कर लिये हैं, पर साथ ही उसने ऐसे भयावने संहार साधन भी निर्मित कर लिये हैं कि जिनका सम्पात होनेपर एक-दो दिनके भीतर हमारी पृथ्वीकी आधी जनसंख्या समाप्त हो जा सकती है और फिर कुछ मासमें गल-गलकर शेष अर्द्धांशका भी प्रायः उन्मूलन हो जा सकता है। भावी परमाणु-युद्ध एवं क्षेप्यास्त्र-युद्ध होनेपर कई सौ करोड़की मानवसंख्यामें यदि कुछ करोड़ भी शेष रह जाय तो हमें प[रमात्मा]का धन्यवाद ही करना होगा। अस्तु, प्रकृतिपर विजयका यह सिद्धान्त तो ध्वंसका ही सिद्धान्त ठहरा।

इसके विपरीत, भारतका रचनात्मक सिद्धान्त यह है कि हम विश्व-प्रकृतिको अपने अधिक-से-अधिक अनुकूल बनायें और सच्चे सुखमय जीवनके लिये प्रकृति-मातासे अनेकानेक वरदान प्राप्त करें। यह रचनात्मक सिद्धान्त आत्म-विजयका सिद्धान्त है। संक्षेपमें, आत्म-विजयका तात्पर्य यह है कि इन्द्रिय-विजय और आत्म-संयमद्वारा हम आत्मोदय करें। आत्मोदयसे मनोविकार शान्त होते हैं और समाप्त हो जाते हैं, अन्तरात्मामें दैवी गुणों और शुद्ध संस्कारोंका आविर्भाव होता है और आत्माओंके सत्त्वगुणी एवं सत्त्वप्रधान बननेके फलस्वरूप विश्व-प्रकृतिके तत्त्व भी सत्त्वप्रधान बनकर दुःखों एवं अभिशापोंके स्थानपर सुखों तथा वरदानोंका ढेरी लगा देते हैं। भारतमें सत्ययुगमें ऐसे ही दैवी गुणोंवाले श्रेष्ठाचारी मानव निवास करते थे किंवा हमारे स्वर्गिक भूतलपर देवगण विचरण करते थे और सत्त्व-प्रधान प्रकृतिके कारण यहाँ घी-दूधकी नदियाँ बहा करती थीं तथा समाज धन-धान्य-रत्नादिसे सम्पूर्ण होकर सच्चे अर्थोंमें सुखी था।

आत्म-विजयके सिद्धान्तका प्रतीक है—सत्ययुग और प्रकृतिपर विजयके रावणी सिद्धान्तका कुफल है—कलियुगमें मानवसमाजकी वर्तमान अधोगति। जिस चमक-दमक, कथित ऐश्वर्य-विभव और राग-रंगकी आजकल इतनी 'महिमा' है और जिससे भारतकी वर्तमान पीढ़ी भी समधिक चमत्कृत होकर उसके प्रति सहज आकर्षणसे ग्रस्त है, वह हिरण्यकशिपु, रावण और कंसकी शैलियोंकी ही नकली ऐश्वर्य-विभव है,—यह समझनेमें हमें असावधानी नहीं करनी चाहिये। निश्चय ही इसका परिणाम भी वही होना है, जो कि हिरण्यकशिपु, रावण और कंसकी दम्भ-दर्पपूर्ण और नाशकारी उपलब्धियोंका हुआ था। परमाणु-आयुधोंसे सज्ज और हिंसावाद तथा भोगवादकी प्रवृत्तियोंको बढ़ावा देनेवाले आजके कथित विश्व-नियन्ता अपने व्यवहारमें किस हिरण्यकशिपु या रावणसे किस प्रकार कम हैं? संसारके अन्य देशोंके

लोग समझें या न समझें, अपने पुराणेतिहासके ज्वलन्त कथानकोंके आधारपर इनका वास्तविक मर्म समझनेमें भारतवासियोंकी वर्तमान पीढ़ीको तो प्रमाद या असावधानी नहीं ही करनी चाहिये ।

एकता-सहयोग और पवित्रता-शुद्धताके शाश्वत सत्य

हमारे वेद यों तो विचारों और आदर्शोंके अक्षय रत्नाकर हैं, किंतु सारांशतः हमारे तत्त्वज्ञानी और सत्य-द्रष्टा ऋषि-महर्षियोंने स्वस्थ, सकुशल और सुखी जीवनके लिये दो प्रमुख बातोंपर विशेष बल दिया है, जैसा कि ऋग्वेदके 'संज्ञान-सूक्त'की कुछ ऋचाओंसे प्रकट है। जीवनके लिये कल्याणमयी समृद्धिका सर्वप्रमुख सिद्धान्त है—सहयोग, समन्वय और सहचित्तता । इसीके समकक्ष दूसरा सिद्धान्त जीवनकी पवित्रता और शुद्धताका है ।

तात्त्विक दृष्टिसे देखा जाय तो प्रत्येक जीवधारीका शरीर तत्त्वोंके सहयोग एवं समन्वयसे ही विनिर्मित एवं संचालित है । आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवीके अनवरत परस्पर सहयोगसे ही जगत् चल रहा है, जगत्में जीवन चल रहा है और जीवनके समग्र क्रिया-कलाप चल रहे हैं । हम आकाशमें बोलते हैं और स्वर मुखरित करते हैं; वायुमें श्वास लेते हैं; अग्नि एवं तेजस्में रूप धारण कर खाते-पीते, चलते-फिरते तथा निरन्तर शक्ति प्राप्त करते हैं; जल हमें सरस, हरा-भरा और स्वच्छ बनाता रहता है; और पृथिवी हमें निरन्तर धारण किये रहती है, इन सबके परस्पर और सदा-सर्वदा सहयोग और समन्वयसे कार्य करनेमें ही प्राणिमात्रका अस्तित्व है । इसीसे मन्त्रद्रष्टा और सत्यदर्शी हमारे पूर्व पुरुषोंने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि हम जीवनमें सदा परस्पर सहयोगपूर्वक और समन्वित ढंगसे सत्कार्य करें । इस शाश्वत सत्यके अनुसार कार्य होनेके अभावमें ही आज विश्वमें इतने संघर्ष, टकराव, मतभेद और विग्रह हैं ।

प्रकृतिगत तत्त्वोंका दूसरा कार्य यह है कि वे निरन्तर हमें और हमारे जगत्के वातावरणको शुद्ध, स्वच्छ तथा पवित्र करते रहते हैं । इस प्रकार अपने कार्य-कलापसे ये तत्त्व हम मानवोंके सम्मुख निरन्तर यह सत्य प्रतिभासित एवं प्रमाणित करते रहते हैं कि पवित्रता और शुद्धता-स्वच्छतामें ही जीवन है और अशुद्धता—अपवित्रता ही मृत्यु है—अपवित्र और अशुद्ध रहना वस्तुतः विनाशको आमन्त्रण देना है । कल्पान्त और कल्पारम्भके शाश्वत सिद्धान्त एवं दर्शनके पीछे मूल सत्य यही है कि युगोंके चक्रमें, काल-क्रममें, सृष्टिके नितान्त अपवित्र हो जानेपर प्रलय मच जाया करती है और उसके बाद भगवत्कृपासे आत्माओं, प्राणियों तथा तत्त्वोंके शुद्ध होनेके फलस्वरूप सत्त्वप्रधान सृष्टि तथा दैवी समाजका अभ्युदय हुआ करता है । निष्कर्ष यह कि यदि मानवको जीवन और अभ्युदय प्रिय है तो हमें पवित्रता-शुद्धता-स्वच्छताके भी शाश्वत सत्यका अनुगमन करना ही चाहिये । इससे ही अशुद्ध जीवन और तामसी भोजनादिकी व्यर्थता तथा घातकता भी स्वयंसिद्ध हो जाती है ।

आत्म-कल्याण तथा विश्व-कल्याण

आजकल विश्व-कल्याण और समाज-कल्याणकी बातें इतनी अधिक होती रहती हैं और व्यक्तिवादकी कटु आलोचना करते हुए अप्रत्यक्षतः केवल आत्म-कल्याणकी कामना रखनेवालेकी निन्दा भी की जाती है । तथापि इस तथ्यको अनुभव नहीं किया जा रहा है कि जितनी ही अधिक जन-हित तथा समाज-कल्याणकी बातें विगत कुछ शतकों और विशेषतः विगत कुछ दशकोंमें बढ़ती गयी हैं, उतना ही अधिक मानवमात्रका अपकार तथा अकल्याण होता गया है । ध्यानसे देखा जाय तो इसके मूलमें यही सत्य विद्यमान है कि जबतक व्यक्तिवादको सच्चे अर्थोंमें प्रश्रय और मान्यता प्रदान करके हम व्यक्तिको ठीक और चारित्रिक रूपसे विकसित तथा विशुद्ध नहीं करते, तबतक समाजके लिये उसका सच्चा एवं लाभप्रद योगदान तथा मानव-समाजकी वास्तविक उन्नति असम्भव है ।

योगिराज श्रीअरविन्दने एक स्थलपर ठीक ही लिखा है कि 'हमारा आत्मामें निबद्ध होना—आत्मनिष्ठ होना—ही वह सबसे बड़ी सहायता है, जो हम अपने आसपासके लोगोंको प्रदान कर सकते हैं ।' जैसा कि श्रीअरविन्दने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है—'हमारे आत्मनिष्ठ होनेसे हमारे आसपास एक उत्तम वातावरणका निर्माण होता है और फिर चुपचाप लोगोंको हमारे व्यक्तित्वसे सहायता अपने-आप मिलने लगती है तथा उनका कल्याण सम्पादित होने लगता है ।' प्रश्न तो यह है कि क्या अपनी कथित उपलब्धियोंमें भी नितान्त बेचैनीका अनुभव करनेवाला आजका मानव भारतीय दर्शनके उपर्युक्त मूल सत्योंको सुनेगा और इनका अनुगमन कर सच्चे अर्थोंमें आत्म-कल्याण तथा विश्व-कल्याण करेगा ?

उतार-चढ़ाव

(लेखक—श्रीरामेश्वरजी टाँटिया)

जगत्‌में सभी कुछ सतत परिवर्तनशील और अनित्य है। दिनके बाद रात्रि, रात्रिके बाद दिन होते ही रहते हैं। इसी प्रकार राष्ट्रों, देशों और मनुष्योंकी स्थिति बदलती रहती है। इस सत्यको समझकर मनुष्यको किसी भी परिस्थितिमें मोह-ग्रस्त हो, हर्ष-विषाद नहीं करना चाहिये। यहाँ एक उदाहरण दिया जाता है—

उन्नीसवीं सदीके अन्तिम चरणकी बात है। कराँचीके एक मध्यमवर्गीय सिन्धी परिवारमें हरनाम नामका बालक था। माँ बचपनमें ही मर चुकी थी। बापने प्रौढ़ावस्थामें फिरसे एक गरीब घरकी लड़कीसे विवाह कर लिया। उसके दो सौतेले बहिन-भाई भी हो गये थे।

हरनामकी एक विवाहिता अपनी बड़ी बहन थी। परंतु उसे कभी वार-त्योहारपर भी पीहर नहीं बुलाया जाता था। कभी-कभी वह छिपकर भाईकी पाठशालामें आती और खाने-पीनेकी कुछ चीजें दे जाती। घरमें छोटे भाई-बहनके लिये विशेष अवसरोंपर नये कपड़े आते और तरह-तरहकी मिठाइयाँ बनतीं, परंतु हरनामको कोई भी नहीं पूछता। बेचारा बालक ललचाई आँखोंसे देखता रहता। कभी कदाचित् वे दोनों इसे कुछ देना चाहते तो माँ उन्हें मना कर देती।

एक दिन किसी साधारणसे कसूरपर विमाताने हरनाम-को बहुत मारा। पिता भी पत्नीके डरसे कुछ नहीं बोला। भूखा-प्यासा बच्चा घरसे भागकर समुद्रकिनारे खड़े किसी भारवाही जहाजमें जाकर छिप गया।

थोड़ी देर बाद जब जहाज रवाना हुआ तो उसे वस्तु-स्थितिका भान हुआ और वह सुबक-सुबककर रोने लगा। परसियन आयल कम्पनीका जहाज था। ज्यादातर मल्लाह अरबी थे, दो-चार अंग्रेज अफसर भी थे। जब उन्होंने १२-१३ वर्षके एक अति सुन्दर बालकको इस स्थितिमें देखा तो वे आश्चर्यचकित रह गये। धीरे-धीरे सारी बातों-की जानकारी ली। जहाजका वापस कराँची जाना सम्भव नहीं था। बालकपर कप्तानका स्नेह हो गया। उसने इसे अपनी केबिनमें रख लिया। ईरान पहुँचकर कप्तानने उसे एक धनी ईरानी परिवारमें नौकर रख दिया। हरनामकी बुद्धि कुशाग्र थी। थोड़े दिनोंमें ही उसे अरबी, फारसी और अंग्रेजी बोलनेका अच्छा अभ्यास हो गया।

उन दिनों ईरानमें तेल-कम्पनीमें बहुत-से अंग्रेज अधिकारी थे। परसियन आयल कम्पनीका बड़ा साहब वहाँका ब्रिटेनकी तरफसे सर्वोच्च राजदूत भी था।

एक दिन साहब और उसकी पत्नी टहलते हुए किसी अरबी शब्दके बारेमें बहस कर रहे थे। हरनाम उधरसे गुजर रहा था। उसने क्षमा माँगते हुए विनयपूर्वक कहा कि 'मेम साहिबाका जुमला सही है।'

अब तो हरनामपर उन दोनोंकी पूर्ण कृपा हो गयी। उसे, उन्हींके बंगलेमें रहने, खानेकी सुविधा मिल गयी। हाथखर्चके लिये दो सौ रुपया महीना दिया जाने लगा। काम था—मेम साहिबाको अरबी और फारसी पढ़ाना।

प्रथम महायुद्धमें ईरान मध्यपूर्वका सप्लाई-केन्द्र बना। करोड़ों रुपये महीनेका सामान वहाँसे वितरण होने लगा। तेल-कम्पनीका बड़ा साहब निर्देशक नियुक्त हुआ।

अधिकांश सामानके वितरणका काम मिला—'हरनाम-दास एण्ड कम्पनी' को। १९१८ तक सेठ हरनामदास करोड़पति बन गया। वहीं चार-छः मुताह (कन्ट्राक्ट मेरीज या अल्पकालीन विवाह) कर लिये। सैकड़ों नौकर-चाकर, मुनीम-गुमाश्ते, घर और आफिसका काम देखते। उसके दरवाजेपर अनेक अतिथि और प्रतिनिधि आते रहते, सबका यथायोग्य आदर-सत्कार होता।

संयोगसे एक दिन एक भारतीय साधु घूमता हुआ वहाँ जा पहुँचा। स्वदेशके संन्यासीकी दूसरोंकी अपेक्षा अधिक खातिरदारी होनी स्वाभाविक ही थी। एक महीनेतक किसी राजा-महाराजाका-सा आयोजन उसके लिये हुआ। विदाईकी दक्षिणामें कीमती शाल-दुशाले तथा अच्छी रकम नकद दी गयी।

पंद्रह वर्षके लंबे समयके बाद एक साधु महाराज हरिद्वारके पास मुनिकी रेतीमें एक बड़े-पकौड़ीकी दूकान-पर खड़े हुए दूकानदारको बड़े ध्यानसे देख रहे थे। महाराजको प्रेमसे नास्तेका निमन्त्रण मिला था। पहलेसे ही

५-४ संन्यासी प्रसाद पा रहे थे। दूकानपर ग्राहकोंकी अच्छी भीड़ थी।

दूकानदारने पूछा कि 'महाराज! आप इतने ध्यानसे मुझे क्यों देख रहे थे?'

संन्यासीने पंद्रह वर्ष पहलेकी ईरानप्रवासकी अपनी कहानी सुनाकर कहा कि 'सेठ हरनामदासका चेहरा आपसे एकदम मिलता-जुलता है।'

जब उन्हें पता चला कि वे उसी हरनामदाससे ही बातें कर रहे हैं तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा।

जो कहानी उन्हें सुनायी गयी वह इस प्रकार थी—

आपके चले जानेके एक वर्ष बाद बड़े साहबका तबादला हो गया और छोटे साहबने काम सँभाला। मैंने कभी उसकी परवा नहीं की थी, इसलिये वह और उसके मुँहलगे दोस्त एवं कर्मचारी मुझसे जलते रहते थे। कुछ दिनों बाद ही मुझपर जालसाजीका मुकदमा चलाया गया, जिसकी सजा होती मौत।

जल्दीसे व्यवस्था करके, मुनीमोंको काम सँभलाकर मैं चार-पाँच लाखकी सम्पत्ति लेकर अपने सचिवके साथ ईरानसे छद्मवेशमें रवाना हुआ।

रास्तेमें मेरा सचिव सन्दूकें लेकर न जाने कहाँ उतर गया। मैं जब बम्बई बन्दरगाह पहुँचा तो मेरे पास थोड़ेसे रुपये और एक बहुमूल्य हाथघड़ी बची थी।

घड़ी बेचनेके लिये दो-तीन दूकानोंमें गया। दूकानदार मेरी मैली वेश-भूषा और बढ़ी हुई दाढ़ी देखकर संदेह करने लगे कि शायद मैं घड़ी चुराकर लाया हूँ। केवल ५०), ६०) रुपये तक देनेको तैयार हुए। मैंने क्रोधमें आकर घड़ीको समुद्रमें फेंक दिया।

जगह-जगह मजदूरी करता हुआ संयोगसे यहाँ आ पहुँचा और मैंने बड़े-पकौड़ीकी यह दूकान कर ली। थोड़े दिनों तक तो मनमें संताप रहा, फिर एक दिन एक महात्मा आये। उनका उपदेश था कि 'बच्चा! धन और मानमें सच्चा सुख नहीं है। ईश्वरके बंदोंकी सेवा करो, शान्ति मिलेगी।' तबसे महात्माओंको प्रसाद देकर जो बच जाता है, उसीसे दो जूनकी खुराक आरामसे मिल जाती है। सुबह ६ बजेसे लेकर रातके १२ बजेतक मेहनत करनेसे शरीर भी स्वस्थ रहता है और मन भी सब चिन्ताओंसे मुक्त है। भगवती गङ्गाका तट है और साधु-महात्माओंका सङ्ग-लाभ। सचमुच, मैं बहुत आनन्दमें हूँ।

संन्यासीने प्रसाद पाकर हरनामदासको प्रणाम किया और कहा कि 'वास्तवमें ही आप सुख-दुःखके समदर्शी-समभोगी हैं।'

सन् १९६० में हरनामदासकी मृत्यु हुई। मेरे मित्र स्वर्गीय श्रीराम शर्मा ('विशाल भारत'—सम्पादक) के घर-पर एक-दो बार उससे मुलाकात हुई थी। गरीबी होनेपर भी आदतें वैसी ही थीं। एक-दो कम्बल या कोट पासमें होता तो वह किसी जरूरतमन्दको दे देता। कई दिनोंतक कड़ाकेकी सर्दी भुगतनेके बाद फिर बना पाता। परंतु कभी उसके चेहरेपर दीनताके भाव नहीं दिखायी दिये।

नित्य सर्वत्र तुम्हारा संस्पर्श प्राप्त हो!

करो प्रभु! ऐसी दृष्टि प्रदान।
देख सकूँ सर्वत्र तुम्हारी सतत मधुर मुसकान॥
हो चाहे परिवर्तन कैसा भी—अति क्षुद्र, महान।
सुन्दर-भीषण, लाभ-हानि, सुख-दुःख, मान-अपमान॥
प्रिय-अप्रिय, स्वस्थता-रुग्णता, जीवन-मरण-विधान।
सभी प्राकृतिक भोगोंमें हो भरे तुम्हीं भगवान॥
हो न उदय उद्वेग-हर्ष कुछ, कभी दैन्य-अभिमान।
पाता रहूँ तुम्हारा नित संस्पर्श बिना उपमान॥

आत्मज्ञान और विज्ञान

(लेखक—श्रीव्रजनारायणजी मेहरोत्रा)

"××××आपके यहाँ मानव जिस पृथ्वीको अपनी माता कहता है, उसीसे रत्न-राशि छीननेके लिये उसको खोदता चला जाता है। परंतु वह यह नहीं जानता कि उसकी दुर्भावनाएँ स्वयं उसके विनाशका कारण बन रही हैं। यह उन्हीं रत्न-राशियों तथा सोने-चाँदीकी करामात है कि एक-दूसरेकी गर्दनपर तलवारें चल रही हैं। पहले तो वह पृथ्वीमाताको मूक समझकर लूट रहा था और अब वही सब एक-दूसरेके हाथों हाहाकार करते हुए लूट रहे हैं। लोहा, जो अपने ही रंगकी काली कलुषित भावनासे रौंदकर निकाला गया, उसे भी देखिये कि उसने क्या रंग रचा है। उसकी एक-एक कील असहयोगकी भावनासे मानवके हृदयको भेदे हुए है। उसीकी मार्मिक ध्वनि इन मशीनोंकी गड़गड़ाहटके रूपमें निकल रही है और उन्हींके आँसुओंका इसके अंदर ताना और बाना बना है। वही लोहा जमीनपर दौड़ रहा है रेलगाड़ीकी शक्लमें, पानीपर तैर रहा है जहाजोंकी शक्लमें और आसमानमें उड़ रहा है वायुयान बनकर। पर जहाँ एक ओर मानव इस लूटकी निधिसे अपने सुख-सुविधाओंके साधन बढ़ा रहा है, वहीं दूसरी ओर प्रतिशोधके रूपमें भूमिके अणु-अणुकी संचित आहें अणुबम बनकर इस लोकको सर्वनाशकी ओर किस तेजीसे लिये जा रही हैं, यह किसीसे छिपा नहीं—परंतु यदि कुछ छिपा है तो वह मनुष्यकी आत्माकी घोरतम आहें हैं, जिनको सुननेका मनुष्य साहस भी नहीं करता और जिनको वैज्ञानिक बड़े अहंकारके साथ विज्ञानके उत्कर्षकी चरम सीमा बतलाते थकते नहीं। वही आज आपके लोकके सर्वनाशका कारण बन रहा है। पृथ्वीको रुलाते हुए उसके सीनेसे सोना छीना गया अपनेको सजाने और संसार चलानेके लिये। पर इस क्रियाकी प्रतिक्रिया क्या हुई ? जो दूसरोंको रुलाता है, वह स्वयं भी अवश्य रोता है अर्थात् पृथ्वीसे तुमने सोना चुराकर उसका भोग करना चाहा, पर भावना वह दैवी नियम है, जो कभी मिट नहीं सकता। इसी भावनाके वशीभूत होकर उसकी चोरी और लूट हुई; पर उतनेहीसे पीछा नहीं छूटता। इस भावनाने मृत्यूपरान्त मनुष्यको भूत बनाया और उसके जन्म लेनेपर फिर उसी चोरीकी ओर प्रेरित किया। तुम कुभावनासे एक बार कर्म करोगे और वे भावनाएँ तुमसे जन्म-जन्म वही कर्म कराती रहेंगी। यही प्रक्रिया सोना-चाँदी और सभी रत्न-राशियोंके साथ हुई।"

यह सब सुनते ही मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा। मैंने उत्कण्ठापूर्ण जिज्ञासाके साथ अपने आतिथेय महोदयसे प्रश्न किया, 'पूज्यवर ! सोना, चाँदी तथा रत्न-राशियोंका सदुपयोग किस रूपमें होना चाहिये ?'

"प्रिय भ्रातः ! पृथ्वीने अपने वक्षःस्थलमें इन रत्नोंको इसलिये सँजोकर रक्खा है कि सर्व-जनकी सेवा अप्रत्यक्ष रूपसे इन्हींके द्वारा होती रहे। अर्थात् स्वादु फल और जलके द्वारा यह सब महारत्न मिलकर महारत्नरूपी शरीर, विचार और आत्माको परिष्कृत कर सकें। परंतु किया क्या गया ? उन्हें पृथ्वीसे छीनकर अहंकारका एक साधन बनाया गया, जिसके परिणामस्वरूप युद्ध हुए, परंतु यह स्पष्ट है कि आजतक मानवकी वह पारस्परिक छीना-झपटी बंद न हुई और यह होना भी सम्भव नहीं, जबतक कि दूषित मूल भावनाओंमें परिष्कार नहीं होता।

"वनस्पति विज्ञान इस बातको प्रमाणित करता है कि पृथ्वी ऐसी जड वस्तु भी प्रत्येक क्रियाकी प्रतिक्रियाको जानती, अनुभव करती और उसका फल देती है। मानव कुछ करे या न करे, पर भूमिके कण-कण अपनी क्रिया और प्रतिक्रियाजनित अनन्त रूपोंमें मानवके समक्ष इतने सुन्दर ढंगसे सुसज्जित खड़े हैं कि मानव जिनके एक अंशके बराबर भी कभी नहीं हो सकता। इसका अर्थ यह है कि हरी, नन्ही सुन्दर दूबसे लेकर सुन्दर पुष्प, फल, अनाजोंसे लदी बालियाँ, फलोंसे लदे विशालकाय वृक्ष, यह सब इसी सद्भावनायुक्त प्रतिक्रियाके प्रतीक हैं। इनकी प्रत्येक पत्ती और नस-नसमें रत्नराशियोंके अणु विद्यमान हैं, जिनको खाकर मनुष्यका शरीर कुन्दनके समान देदीप्यमान हो उठता है। इन्हींको खाकर जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, सूर्योदयसे सूर्यास्ततक अनन्त मधुर सुरोंमें उसीकी इच्छासे उस देवीका दया-गान करते थकते नहीं। यह वही रत्नराशि है, जिसका जलके रूपमें पृथ्वी माता सप्रेम सहर्ष सबको पान करा रही है। पर अफसोस है कि आपके लोकमें मनुष्य इसीको चुराकर स्वयं चोर बन, चोरीका दण्ड भुगत रहा है।"

'पूज्यवर ! आपके लोकमें खनिज तथा वनस्पति-विज्ञानके इस अलौकिक क्षेत्रमें क्या अनुसंधान किया जाता है ?'

"सबसे प्रथम उस परम पितासे प्रार्थना होती है, 'हे परमात्मा ! तू पृथ्वीके वक्षःस्थलको प्रिय और पुनीत भावनाओंसे भर दे' । फिर हम इसके कणोंके लिये अपनी आत्मिक भावनाओंसे जान और देखकर जो जहाँका पात्र होता है, उसको वहाँ पहुँचा देते हैं—वह इसलिये कि उन कणोंको किसी प्रकारकी अपनी उन्नतिमें कोई बाधा न डाल सके । हमारी हार्दिक भावना रहती है कि अन्न एवं समस्त प्रकारकी वनस्पतिकी पैदावारमें इतना सहयोग हो कि उनका इसके आगेका जन्म अधिक समुन्नत हो । यों तो पुष्प, पौधे और वृक्ष अपनी क्रिया-प्रतिक्रियासे स्वयं उत्पन्न होते हैं, पर हमारे यहाँसे अनुसंधानकी प्रयोगशालमें इनकी उत्तम गुणोंसे युक्त विभिन्न जातियों एवं राशियोंका इतना विकास कराते हैं कि उनका स्वयंका अस्तित्व सार्थक हो जाय, न कि इसलिये कि उनको व्यापारका साधन बनाया जाय । पृथ्वी हमारे तथा हमारे निकटस्थ जीव-जन्तुओं और अन्तमें अपने कणोंका पोषण करती है । यह सेवा एक बहुत ऊँचा स्थान रखती है । इसलिये उसके प्रति हमारी सेवा कोई सेवा नहीं, केवल कर्तव्य है । इसीका यह परिणाम है कि आप हमारे यहाँ माली और कृषक नहीं पायेंगे, वरं प्रकृति स्वयं हमारी इच्छा एवं भावनाके अनुकूल हमारे गृहों और वाटिकाओंको स्वयं उद्यानके रूपमें परिणत कर देती है । इसलिये यहाँ श्रमदान नहीं होता, वरं सेवा-सम्बन्धी कर्तव्यका सुचारुरूपसे ईश्वरके इच्छानुसार पालन होता है ।"*

* उपर्युक्त सामग्री सम्मान्य श्रीब्रजनारायणजी मेहरोत्राद्वारा लिखित 'विश्वशान्तिकी खोज' नामक महत्त्वपूर्ण पुस्तकसे उद्धृत है । पुस्तक 'रघुसाहित्यप्रकाशन'' २४ । १६५, रामनारायण बाजार, कानपुर—१' से प्रकाशित है । मूल्य विशिष्ट संस्करण ८) तथा साधारण संस्करणका ४) है । पुस्तकके निवेदनमें श्रीबालकुमारजी खरे, एम्० ए० लिखते हैं—

"यह वैज्ञानिक युग है । आज विज्ञानपर आत्मिक चेतनाका नियन्त्रण न रह जानेसे मानवकी मानवता और उसकी संस्कृतिका ह्रास इतनी तीव्र गतिसे हो रहा है कि वह समय अब दूर नहीं, जब कि यह वैज्ञानिक प्रगति ही इस संसारके समस्त वैभव और सौन्दर्यके विनाशका कारण बन जायगी । आज मानवके मानवतासे विचलित होते ही उसके विचार एवं व्यवहारमें जो परिवर्तन आ गया है, वही इस मानव-लोकके अधःपतन तथा अशान्तिका मूल कारण है ।

"मानवताका पुनरुत्थान मानवके व्यावहारिक, वैचारिक और आत्मिक जीवनके समन्वयपर आधारित है, जो व्यक्तिसे लेकर विश्वतककी शाश्वत शान्तिकी आधार-शिला है । हमारे जीवनमें यह समन्वय किस प्रकार सम्भव है—यही प्रस्तुत ग्रन्थका मूल विषय है ।

× × × ×

"यह सम्पूर्ण रचना लेखककी व्यावहारिक, वैचारिक एवं आत्मिक जीवनकी यथार्थ अनुभूतियोंसे प्रस्फुरित हुई है । इस ग्रन्थमें यथार्थ मानवताकी प्राप्तिके सहज, सुलभ साधन वर्णित हैं, जो जीवनमें प्रयोगोंद्वारा पूर्णतः प्रमाणित हो चुके हैं ।

"यदि पाठक कृपया इस पुस्तकको आद्योपान्त पढ़कर इसमें उल्लिखित तथ्योंको अपने जीवनमें दृढ़ संकल्पके साथ उतारनेका प्रयत्न करेंगे, तो लेखकको पूर्ण विश्वास है कि उनके उस परिवर्तित जीवनसे श्रेष्ठतर प्रमाण इन तथ्योंकी यथार्थताको प्रमाणित करनेके लिये सम्भवतः दूसरा न होगा । लेखककी यही हार्दिक कामना है कि हम सभी उस ईशकी अनन्त दयापर अडिग विश्वास और भरोसा रखते हुए ऐसे यथार्थ मानव-जीवनको अपनानेके लिये तत्पर हो जायँ, जिससे कि आज हम अपने इस भूलोककी सम्पूर्ण मानव-संस्कृतिको विनाशके कराल गालमें जानेसे बचा सकें ।"

इससे ग्रन्थके महत्त्वका कुछ अनुमान हो सकता है । हम चाहते हैं, इस ग्रन्थमें प्रकाशित भावों-विचारोंका विशेष प्रचार हो और जनता लाभ उठावे ।—**सम्पादक**

सृष्टि-संहार

(मानव आज अपने ही द्वारा सृजन की हुई सभ्यतासे विश्वका विनाश करने जा रहा है ।)

'स्काला' (Scala) तथा 'टाइम' (Time) नामक पत्रिकाओंमें प्रकाशित निम्नलिखित उद्धरण इस बातके द्योतक हैं कि मानवजाति किस प्रकार अपने ही द्वारा सृष्ट और अपनी ही सभ्यताके उत्पादनोंद्वारा धीरे-धीरे आत्मविनाशके पथपर अग्रसर हो रही है । वायु, जल और अन्ततः समुद्रों तथा समूची जैव-सृष्टिको विषाक्त बना देना ही इसका परिणाम होगा ।

अपनी आजकी इस सभ्यताको ध्वस्त किये बिना मनुष्य अपने-आपको कैसे बचा पायेगा, यह समझमें नहीं आता । यदि मनुष्यको जीवित रहना है तो उसे इस विशाल औद्योगिक प्रगति (Gigantic Industrial advance) और आणविक प्रतिक्रिया (Atomic rediation) को समाप्त करना ही होगा ।

× × ×

अब हम कुछ और भयोत्पादक भविष्यवाणियोंको प्रकाशित कर रहे हैं ।

(१)

गत वर्षकी वसन्त-ऋतुमें जबतक नारवे (Norway) के रसायनज्ञ श्रीनारवल्ड फिमराइट (Norvald Fimreite) ने सेंट क्लेयर (St. Clair) झीलमें पकड़ी गयी मछलीमें पारेका आभास उपलब्ध होनेका उल्लेख नहीं किया था, तबतक किसीको भी इस बातकी आशङ्का नहीं थी कि जलको सर्वाधिक दूषित करनेवाले पदार्थोंमें इसका भी एक स्थान है । कुछ वैज्ञानिकोंका अनुमान यहाँतक था कि 'पारा झीलों और नदियोंके तलमें नीचे बैठ जायगा, बिना कुछ हानि पहुँचाये मछलियोंके शरीरसे भी पार हो जायगा अथवा यदि कुछ मछलियाँ मरीं भी तो अन्य जीवोंको कोई हानि नहीं पहुँचेगी ।' इस वर्षतक पारेकी गणना उन वस्तुओंकी सूचीमें नहीं थी, जिनका परीक्षण फेडरल वाटर क्वालिटी एडमिनिस्ट्रेशन(Federal Water quality Administration) को करना होता है । इस आन्तरिक विभागीय संस्थापर ही राष्ट्रके जलकी सुरक्षाका उत्तरदायित्व है ।

संस्थाके अधिकारी अब यह अनुभव करने लगे हैं कि पानीमें पहुँचकर पारेकी शक्ति वही नहीं रहती । एक रासायनिक प्रतिक्रियाद्वारा अपेक्षाकृत निरापद पारा एक घातकरूप (Methyl Mercury) धारण कर लेता है । पारेकी सूक्ष्म मात्राएँ कणाकार जीवोंद्वारा ग्रहण कर ली जाती हैं । इन जीवोंको छोटी-छोटी मछलियाँ खा जाती हैं और उनको पाइक तथा पिकेरल (Pike and Pickeree) आदि बड़ी-बड़ी हिंस्र मछलियाँ उदरसात् कर लेती हैं । जब मनुष्य इन मछलियोंको खाते हैं, तब घातक पारेकी इतनी मात्रा उनके भीतर पहुँचनेकी सम्भावना रहती है कि वे अंधे हो जायँ, उनका मस्तिष्क क्षतिग्रस्त हो जाय अथवा सदाके लिये आँखें उन्हें मूँद लेनी पड़ें ।

गतवर्षके भीतर इस जलाभिरक्षण विभाग (Agency) ने जलको दूषित करनेवाले उद्योगोंको बंद कर दिया है तथा न्याय-विभागसे सात प्रदेशोंकी दस कम्पनियोंपर जल-दूषणके अपराधमें मुकदमे चलानेके लिये कहा है । जाँच करनेसे पता चला कि इसमें सर्वाधिक दोषी या तो कागज बनानेवाली कम्पनियाँ थीं, जो कागज-निर्माणमें उत्पन्न होनेवाले लसलसेपनको रोकनेके लिये पारेका उपयोग करती थीं अथवा रासायनिक पदार्थोंका निर्माण करनेवाली कम्पनियाँ थीं, जो समुद्रके खारे जलमेंसे क्लोरिन (Chlorine) को विलग करनेके लिये पारेका उपयोग करती थीं ।

गत सप्ताह आन्तरिक व्यवस्था विभागके अधिकारियोंने घोषणा की कि अमेरिकाके जल-मार्गोंमें पारेका जो घूर लगता था, उसमें अब ८६ प्रतिशत कमी हो गयी है ।

फिर भी जलाभिरक्षण विभागके सम्मुख केवल १०० व्यक्तियोंके सहारे देशकी धरतीपर छाये एक लाख चौंतीस हजार वर्गमीलके जलमार्गोंकी सफलतापूर्वक रक्षा करनेकी समस्या उपस्थित है । उनका असफल होना असम्भव नहीं है । एक ओर तो अभी भी अमेरिकाके समुद्र-जलमें भयानक परिमाणमें पारेकी मात्रा प्रविष्ट हो रही है, यह एक चिन्ताजनक बात है । और दूसरी ओर पहलेसे ही जो पारा पानीमें विद्यमान है, वह सम्भवतः ५० से १०० वर्षोंतक बना रहेगा और लगातार रासायनिक प्रतिक्रियाद्वारा प्राण-घातक रूप धारण करके मछलियोंका आहार बनता रहेगा ।

दुर्भाग्यसे वातावरणजनित संकटोंकी नव-उपलब्ध वस्तुओंमें पारा केवल एक ही धातु है । डार्टमाउथके मेडिकल स्कूल (Medical School) के डाक्टर हेनरी श्रुडर (Dr. Henry Schroeder) ने एक सिनेट उप-समिति (Senate Sub-committee) को चेतावनी दी है कि सीसा, कैडमियम (Cadmium) और निकेल

कार्बोनिल (Nickel Carbonyl) आदि पदार्थ, जल तथा वायुको दूषित करनेवाली अन्य कीटाणुनाशक दवाइयोंसे कहीं अधिक प्रतारक हैं। ऐसी सम्भावना है कि समितिके सदस्योंको बताया गया कि मृन्धातु (cadmium) की सूक्ष्म मात्रा मनुष्यमें उच्च रक्तचाप बढ़ानेका कारण बन सकती है और रूपक प्रांगारल (Nickel Carbonyl) फेफड़ेके कैंसरका हेतु हो सकती है।

(२)

समुद्रगर्भके विख्यात अन्वेषक जैक्वीस वाइवस कास्टियु, (Jacques Yves Cousteau) ने जो कुछ भी देखा है, उसे आशाहीन एवं रूखे शब्दोंमें इस प्रकार व्यक्त किया है—

'जलका दूषितीकरण इतना व्यापक हो गया है कि समुद्रोंके समाप्त हो जानेकी आशङ्का खड़ी हो गयी है।'

कैलिप्सो नामक जलयानपर कार्यरत कास्टियु एवं उसके सहयोगियोंको भयभीत कर देनेवाली वस्तुओंमें सागरतल्पर केवल तेलकणोंकी सर्वत्र व्याप्ति ही नहीं थी। उनका कथन है—'लोग यह नहीं समझते कि सारे दूषितीकरणका पर्यवसान समुद्रमें ही होता है। पृथ्वी कम दूषित होती है। वह वर्षाके जलसे धुल जाती है, जो प्रत्येक वस्तुको बहाकर समुद्रोंमें डाल देता है, जहाँ गत २० वर्षोंमें ४० प्रतिशत जीवोंका ह्रास हो गया है। मछलियाँ अदृश्य हो रही हैं और साथ-साथ वहाँकी वनस्पतियाँ भी।' उसने विशेषतया मछली मारनेकी नृशंस आधुनिक प्रणालियोंके कुल्नाशी प्रभावकी भर्त्सना की है—'समुद्रतलोंको खुरचा जा रहा है। अण्डे और डिंब-मालाएँ लुप्त हो रही हैं। पूर्वकालमें समुद्रमें नयी सृष्टियाँ होती रहती थीं और यह चक्र बराबर चलता रहता था। अब इस चक्रको अस्त-व्यस्त किया जा रहा है। बिजलीके झटके दे-देकर चिंगर मैछलियोंको अपने छिद्रोंमेंसे निकालकर घेरकर जालोंमें फँसाया जाता है। महा-चिंगरोंकी खोज उन स्थानोंमें की जा रही है, जहाँ वे पहले आश्रय प्राप्त किया करते थे। यहाँतक कि मूँगे भी अदृश्य हो रहे हैं।'

(३)

स्काला, अगस्त, ७०

'आगामी २५ वर्षोंसे भी कम समयके अंदर ही अमेरिकाके नगरोंमें रहनेवाले बच्चोंको घरोंसे बाहर खेलनेके लिये अपने मुखोंपर गैस-निवारक चेहरे लगाने पड़ेंगे। यदि इस अवधिमें वायु-दूषणकी अत्यधिकताको नियन्त्रणमें न लाया गया तो अपने स्वास्थ्यको संकटमें डाले बिना कोई भी व्यक्ति दो-तीन घंटेसे अधिक घरके बाहर नहीं रह सकेगा।' यह उस अमेरिकाके एक सेनेटरका कथन है, जहाँ प्रतिदिन ९ करोड़ मोटर गाड़ियाँ, तीन लाख टन कार्बन मोनोक्साइड (Carbon monoxide) का निक्षेप हवामें करती रहती हैं और जहाँ कारखानोंकी चिमनियोंसे प्रतिवर्ष १४ करोड़ बीस लाख टन विषैले पदार्थ हवामें जाकर मिलते हैं। मानवप्राणी तथा श्वास लेनेवाले इतर जीवोंके लिये आवश्यक हरी वनस्पतियोंसे प्राप्त आक्सीजनकी मात्रा उनके अपने देशमें अपर्याप्त हो चुकी है। संयुक्तराष्ट्र पहले ही ऑक्सीजनकी कमीको पूरा करनेके लिये अधिकतर दूसरे-दूसरे साधनोंपर निर्भर है। उदाहरणार्थ—प्रशान्त महासागरके तलसे वायुद्वारा लाये हुए पादप मन्दप्लवकों (Plant Plankton) द्वारा। अमेरिकाके समान ही बहुत-से अन्य देश भी अपनेको उसी परिस्थितिमें पड़ा पा रहे हैं—विशेषकर वे देश जहाँ गत दशाब्दों-में औद्योगीकरण तथा परिवहनके क्षेत्रमें तीव्रगतिसे वृद्धि हुई है। प्राविधिकविज्ञान, औद्योगिक उत्पादन तथा समृद्धिकी लालचमें मनुष्य प्रकृतिकी उपेक्षा कर रहे हैं। वे प्रकृतिके संतुलनको नष्ट करनेपर उद्यत होकर निकट-भविष्यमें अपने जीवनके आधारको अपने ही हाथों मिटाने जा रहे हैं। नदियों, समुद्रों, पृथ्वी तथा वायुका दूषितीकरण, थोड़े शब्दोंमें कहा जाय तो हमारे प्राकृतिक वातावरणपर यह अत्याचार और उसके विनाशका कार्य उस चिन्ताजनक सीमातक पहुँच गया है, जिसने मनुष्यजातिके स्वास्थ्यको संकटमें डाल दिया है और जो शारीरिक नये-नये विकासके आधारको भी नष्ट कर रहा है। मनुष्य आज इस बातको भूल गया है कि प्रकृतिके एक अंशके रूपमें सहज क्षुब्ध हो सकनेवाली परस्पर सम्बद्ध जीवनधाराओंपर ही उसकी सत्ता अवलम्बित है। तथा गत करोड़ों वर्षोंमें निर्मित असंख्य लघुजीवन चक्रसे बने हुए बृहत् चक्रका वह एक अंश है। उसने इस तथ्यपर विचार करना ही छोड़ दिया है कि पृथ्वीपर सजीव प्राणियोंकी एक दूसरेसे अलग कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। ये सब प्राणी इस जटिल ढाँचेमें नाना प्रकारसे अन्योन्याश्रित हैं और इन सजीव प्राणियोंमें मनुष्य भी एक इकाई है, जो अपने वातावरणके अभावमें हिलने-डुलनेमें असमर्थ होगा। फिर भी, वह समस्त जीवन-

धाराओंके संतुलनको बिगाड़नेपर तुला हुआ है। सब प्राणियोंका परस्पर आन्तरिक सम्बन्ध ही जीवनधाराका सरल प्रवाह है। लाखों वर्षोंसे पृथ्वीपर यही होता आया है कि जीवित रहनेके लिये मनुष्यको जिस-जिस वस्तुकी आवश्यकता हुई, प्रकृति उसका निर्माण करती आयी है। प्रकृति उसे हरियाली प्रदान करती है, जिससे उसको श्वासके लिये और उसके आहारका काम देनेवाले पदार्थोंके लिये आक्सीजन प्राप्त होता है। यही उसे शुद्ध जल और सूर्यका प्रकाश भी देती है।

आज प्रकृति अस्वस्थ है। जिस हवामें हम रहते हैं, जिसमें श्वास लेते हैं, वह भी रोगग्रस्त है। मनुष्यने उसे विषाक्त बना डाला है; क्योंकि समय रहते उसे यह बात समझमें नहीं आयी कि प्राविधिक विज्ञान, औद्योगीकरण और परिवहनके विकासके साथ-साथ इसकी सुरक्षाका भी प्रबन्ध होना आवश्यक है। आज अकेले जर्मनीके फेडरल रिपब्लिकमें—जो कि संकुचित सीमाओंमें आबद्ध एक विशाल औद्योगिक राज्य है। प्रतिवर्ष २ करोड़ टन विषाक्त द्रव्यका निक्षेप उस वायुमें होता है, जिसमें लोग श्वास लेते हैं। मुख्यतया कोयले तथा तेल-जैसे भूगर्भसे प्राप्त होनेवाले ईंधनोंसे मलिन गैसें निकलती हैं। अनुमानतः ७० लाख टन भयानक कार्बन मोनोक्साइड, (Carbon Monoxide), ५० लाख टन सल्फ्युरिक ऑक्साइड (Sulphuric Oxide), २५ लाख टन नाईट्रस ऑक्साइड (Nitrous Oxide), ३० लाख टन हाइड्रो कार्बन (Hydrocarbon) तथा २५ लाख टन धूल होती है।

औद्योगिक क्षेत्रोंमें एक घनमीटरमें धूलिकणोंका संग्रह ४००० कणोंतक हो सकता है, जो पृथ्वीकी सामान्य वायुसे हजार गुना अधिक है। इसीलिये मध्यम श्रेणीके औद्योगिक नगरमें निकटवर्ती ग्रामीण क्षेत्रोंकी अपेक्षा ३० प्रतिशत कम सूर्य-प्रकाश और ९० प्रतिशत कम पारजम्बु किरणें (Ultraviolet Light) प्राप्त होती हैं।

वायुके समान ही जल तथा पृथ्वी भी आज अस्वस्थ हैं। उनकी स्वाभाविक क्रियाएँ अस्त-व्यस्त हो गयी हैं। इसका दोष भी सभ्यताके इन विषाक्त द्रव्यों तथा कूड़ों-कचरोंपर ही है। इसका परिणाम और भी भयंकर है; क्योंकि इसके कारण असंख्य प्राणियोंके अस्तित्व-नाश तथा अन्य प्राकृतिक जीवन-चक्रोंमें विरूपताकी आशङ्का खड़ी हो गयी है। लगभग एक सेर खनिज तेल दस लाख सेर पानीको पीनेके लिये अनुपयुक्त बना देता है। फिर भी प्रतिवर्ष लाखों सेर तेल पृथ्वीपर बह जाते हैं और इससे कई गुना अधिक तेल समुद्रोंमें चला जाता है। पृथ्वी तथा वायुके महान् संकटोंमेंसे खनिज तेल एक प्रधान संकट है, परंतु एकमात्र यही नहीं है। करोड़ों-करोड़ों घरोंसे निरन्तर निकलनेवाला विष पुनः प्रकृतिकी ओर लौट रहा है। पौधों-पर लगनेवाले कीड़ोंको मारनेके लिये आजकल विशेष प्रकारके रासायनिक द्रव्य काममें लिये जाते हैं, जो मूलतः क्लोरीनेटेड हाइड्रो कारबाइड हैं। ये बनते तो हैं कीड़ोंको मारनेके लिये, परंतु आज मत्स्य-भक्षी पक्षी (Aspreys) तथा अन्य पक्षियोंका संहार कर रहे हैं। ये पक्षी-समुदाय पोषण-शृङ्खलाकी एक छोरपर अवस्थित हैं, जिसपर एक भयानक आक्रमण हो रहा है। समुद्री वनस्पतिका आहार करनेवाले छोटे समुद्री जीव लोभीके समान इन विषोंका भक्षण करते हैं, छोटी मछलियाँ इन समुद्री जीवों-को खाती हैं और उन्हें बड़ी मछलियाँ निगल जाती हैं और स्वयं ये बड़ी मछलियाँ पक्षियोंका शिकार बन जाती हैं। विषकी मात्रा इस शृङ्खलाके प्रत्येक प्राणीमें अधिकाधिक जमा होती जाती है। अन्य बातोंके अतिरिक्त कैल्शियमका आत्मसात् करनेकी क्रियामें अवरोध उत्पन्न होता है। उदाहरणके लिये हम मत्स्य-भक्षी पक्षीके अण्डोंके ऊपरी छिलकोंका उल्लेख कर सकते हैं, जो कैल्शियमकी कमीके कारण इतने पतले हो जाते हैं कि वे अण्डोंको सेनेवाले पक्षियोंके बोझसे ही टूट जाते हैं। फलतः आगामी पीढ़ीका मूर्त होना ही रुक जाता है।

संसारमें क्लोरीनयुक्त कीटाणु नाशक द्रव्योंका आनुमानित उत्पादन १९६८ में ४० लाख टन था। उसकी १०० मिलीग्राम मात्रा एक चूहेको मारनेके लिये पर्याप्त है। आज इन विषोंके लाखों टन वायुमण्डल तथा समुद्री लहरोंपर विश्वके चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं। दीर्घस्थायी विष डी० डी० टी०, जिसका प्रभाव कई वर्षोंके पश्चात् ही समाप्त हो पाता है, पृथ्वीके अपने प्रयोगके स्थलोंसे हजारों मील दूर एस्कीमो लोगोंके शरीरमें, दक्षिणी ध्रुवके समुद्री पक्षी (Pinguins)की चर्बीमें तथा विशाल समुद्रोंकी वनस्पतियोंमें पाया गया है।

जल तथा इसमें रहनेवाले जीवोंके लिये इससे भी कहीं बड़ा संकट विज्ञान तथा प्राविधिक ज्ञानकी नवीन कृतियोंमें

उपज रहा है और वह है—'आणविक शक्ति-उत्पादनके कारखाने'। इन आणविक मशीनोंको ठंढा करनेके लिये उपयोगमें आनेवाला जल नदियोंमें छोड़ दिया जाता है, जो जलको गरम करके ऑक्सीजनकी मात्राको कम कर देता है। जो और कुछ नहीं तो, पहलेसे ही विद्यमान विषाक्त पदार्थोंके विषको बढ़ानेका कार्य तो करता ही है। इसीका नाम है—तापज विषाक्तीकरण। उष्णीकरणकी यह प्रक्रिया जलको भाफसे ढककर पर्याप्त सूर्यप्रकाशके प्रवृष्ट होनेके मार्गमें रुकावट पैदा कर देती है, जिसके परिणामस्वरूप हानिकारक समुद्री वनस्पतियोंकी वृद्धि होती है। संक्षेपमें इतना कह सकते हैं कि अत्युत्तप्त करनेकी यह प्रक्रिया जलकी जैव-सृष्टिमें असंतुलन निर्माण करके मछलियोंके वातावरण और चारों ओरकी परिस्थितिको अस्त-व्यस्त कर डालती है।

उपर्युक्त तथ्य कलकत्तेसे प्रकाशित 'ट्रूथ' (Truth) नामक पत्रके गत ६ नवम्बर १९७० के अङ्कसे लिये गये हैं, इनके पढ़नेसे पता लगेगा कि आजका प्रगतिशील मानव वस्तुतः विनाशकी ओर ही प्रगति कर रहा है, विकासकी ओर नहीं। यह विनाशकी प्रगति यों ही चलती रही तो पता नहीं, कितना भयानक परिणाम होगा।

पिछले श्रीभगवन्नाम-जपके स्थानोंकी सूची

[पिछले श्रीभगवन्नाम-जपकी संख्याकी सूचना गताङ्क-पृष्ठ १२१८ पर छप चुकी है। नीचे स्थानोंके नामोंकी सूची दी जा रही है।]

भगवान्‌की कृपासे ९९० स्थानोंके नाम हमारे यहाँ नोट हुए हैं, जहाँ जप हुआ है। बहुत-से लोगोंने सूचना ही नहीं दी है। नामोंको नोट करनेमें पूरी सावधानी बरती गयी है, फिर भी रोमन लिपिमें नाम लिखे रहनेसे उन्हें देवनागरी लिपिमें करनेपर उच्चारण-भेद हो सकता है। बहुत-से ऐसे पत्र हैं, जिनमें नाम ठीकसे पढ़नेमें नहीं आता। पूरी चेष्टा रक्खी गयी है कि नाम ठीकसे पढ़ा जाय, पर इसमें भूल सम्भव है। कुछ पत्र डाकविभागकी गड़बड़ीसे, कुछ हमारे कार्यालयकी लापरवाहीसे चढ़े बिना भी रह सकते हैं।

अँधियारखोर, अंजनखेड़, अकमेन, अकूबा, अचलजामू, अजबपुरा, अजमेर, अजीतगंज, अठेहा, अदौनी, अनूपगढ़, अन्तपैठ, अपहर, अमगवाँ, अमझेरा, अमनौर, अमपोल्ट्र, अमारुत, अमृतसर, अम्बाला, अम्बाह, अम्बिकापुर, अयोध्यागंज बाजार, अरई, अरड़का, अरसारा, अरूण्डलपेट, अलसीसर, अल्मोड़ा, अलीबाग, अलीगढ़, अलैप्पी, अवादगंज, अशोकनगर, अमीफाबाद, अहमदाबाद, अहरौला, आतेला, आकोट, आगरा, आजादगंज, आजिमगंज, आठगढ़, आलीगंज, आनन्दपुरा, आभी, आरा, आरीटार, आरंग, आलीराजपुर, आवगिलासायर, आसीन्द, आसीफाबाद, इगतपुरी, इच्छापुर, इच्छेबस्ती, इटर्की, इटावा, इटौंजा, इटौवाकिसुन, इन्दौर, इमिलिया, इलाहाबाद, ईरा, उज्जैन, उडीपी, उतखेड़, उत्तरकाशी, उदयपुर, उदयपुरा, उमरा, उमरिया, उमरी, उरदान, उल्कानामण्डी, ऊगरपुर, ऊटगन, ऊमरपुर, एकडंगा, एकाठा, एकमा, एरिक्सोन, ओरई, औरंगाबाद, कंकरिया, कवँत, कइलगढ़, ककवारा, कठोती, कड़बीन्धा, कण्डुकूर, कन्नड़, कन्नौद, कनासिया, कपकोट, कपसा, कपिलेश्वरपुरम्, कपेया, कफलौड़ी, कबीरउद्दीनपुर, कमलापुरम्, कमासिन, क्यावर, करगीरोड़, करनाल, करनू, करवाड़, करनौल, करसौल, करुआ, करोली, कणू, कर्वा, कवटल, कलकत्ता, काँकरोली, काँकेर, काँचला, काँवा, काकूपुर, कादरगंज पेढ़रा, काद्राबाद, कानपुर, कानियाँ, कालासीला, कालीकट, कालीम्पोंग, कालेकाल्नी, काशीपुर, कासोन, किछा, किन्हावर, किराना, किसनगढ़, कुँवरकोटरी, कुँडई, कुँड़िया, कुटरा, कुटासा, कुदन, कुमना, कुर्मीचक, कुम्ही, कुलगढ़ी, कुशालपुरा, कुसुम्भी, कुसौल, कूँडी, कूणघेर, केऔंझर, केकड़ी, केयाल, केराकत, केशवराघवपुर, कैया, कोंच, कोईली, कोकलकच्चक, कोकुलपल्ली, कोरवगाँव, कोचुर, कोट, कोट्यादीक्षित, कोटलाखुर्द, कोटा, कोटीपल्ली, कोठलंका, कोठीचारकलाँ, कोड़ाजहानाबाद, कोप्पाकडुर, कोयम्बतुर, कोरगवाँ, कोलर, कोल्वारी, कोल्हापुर, कोसली, कौड़िया, कौड़ियागंज, कौलीडिहरी, खरीजपुर, खजूर, खजूहा, खड़का, खप्टिहाकलाँ, खरकड़ीकलाँ, खरगा, खरदाह, खरोसा, खाचरौद, खातोनी, खापा, खारकलाँ, खासपट्टी, खियालो,

खिराडा, खुदवाड़, खुसुरुपुर, खेड़ब्रह्मा, खेड़ली, खेतराजपुर, खेवुतागा, खेमीपुर, खेजड़ा, खैरागढ़, खोड़, खोरी, गंगाडीह, गंगापुर, गंगोह, ग्वालपाड़ा बाजार, ग्वालियर, गढ़र, गढ़शंकर, गढ़ी, गढ़ीकोड़ा, गढ़ीपुरा, गया, गराऊँ, गरीफा, गल्लेबोरगाँव, गाँधीसागर कॉलोनी, गाजियाबाद, गाजीपुर, गायघाट, गिरिजास्थान, गिरिडीह, गिरी, गीताप्रेस, गींदम, गुजरा, गुडेबल्लूर, गुण्टुर, गुनौर, गुरसराय, गोंचीतरोंदा, गोंडल, गोंदिया, गोराटोला, गोढ़िया, गोनौन, गोमो, गोरखपुर, गोरपार, गोलाकोट, गोलाघाट, गोविन्दपुर, गोहाटी, गौतमपुरारोड, गौरखेड़ाकुम्भी, घण्डौली, घरयाणा, घाटशीला, घुड़हर, घोड़ाडोंगरी, घोरीकीता, चक, चकराता, चकिया, चकेरी, चकौंध, चण्डीगढ़, चण्डेसर, चतुरमौदह, चन्दनपट्टी, चन्दनपुरा खुर्द, चन्दा, चाँदपुरगणेश, चाँदपुरा, चाँदी, चाँदूरबिस्वाँ, चाँध, चिचोली, चितहरी, चितौरा, चिरईडोंगरी, चिलवरिया, चीराना, चुनार, चूरू, चोटियाबरियारपुर, चौकी इमारतवाड़ा, चौसा, छपरा, छपारा, छोटा उदेपुर, छोटा मिर्जापुर, छोटी खाटू, जगदलपुर, जगाधरी, जटमलपुर, जम्बूसर, जरीगुम्मा, जलालपुर, जाम, जामठी, जिरौली, जुनाइल, जैनाल, जोगीपेठ, जोरावरडीह, जौनपुर, जौरही, झगराखाँड, झरियापाली, झलाँसड़ी, झाबुआ, झारसुगुड़ा, झालरापाटन-नगर, झालू, झुमियावाली, टाँकी समोध, टिकारी, टिमरनी, टिहरीगढ़वाल, टीकमगढ़, टेमर, टेहरा, टोकरटा, टोकडरा, ठमाऊ, ठठिया, ठिकहाँ, ठीठारियो, डबरामण्डी, ड्योढ़ी, डावड़ी, डीमोली, डुमरपानी, डुमरियाखुर्द, डुमरी, डूँगरपुर, डेहरी, डोडवत, डोभी, डोम्बीवली, डोम्हाटोला, डौंडी, ढाँगल, तमनारघरघोड़ा, तरेंगा, तल्लीबिठोली, ताली, तिदवारी, तिरको, तिरुचिरापल्ली, तिरुनिल्यी, तिरोड़ी, तिलकनगर, तिलकपुर, तिलखी, तिलहर, तीरमऊ, तुंगणि, तुलसीपुरग्राण्ट, तेजपुर, तौरा, थानागद्दी, थुक्कले, दत्तनगर, दतौली, दमोह, दरियाबाद, दरीआवा, दरीमा, दरेकसा, दसवतपुर, दसारोखुर्द, दहोराबच्चसिंह, दाँतावाड़ा, दाड़ी, दादर, दिवी, दिनौली, दिल्ली, दुन्दपुर, दुबेपुर, देवगढ़, देवनगर, देवबन्द, देवबहार, देवरीबखत, देवला, देवास, देशनोक, देहरादून, दोकोहा, दोन, दोरवा, धनगावाँ, धनबाद, धनौड़ाखुर्द, धवही, धवी, धार, धारी, धारवाड़, धुर्वा, धूलिया, धौरपुर, नगरिया, नगरियादेवधरापुर, नग्रोटाबगवाँ, नगलावनी, नन्दुर, ननौरा, नयीसराय, नरकटियागंज, नरगोड़ा, नरफमरी,

नरसण्ड, नरेला, नवाँशहर दोआबा, नागपुर, नागौर, नानकसागर, नापासर, नारदीगंज, नारायणपुर, नारोली, नासिक, नाहरगढ़, निपनियाँ, निरमली, निर्मण्ड, नूरपुर, नेपानगर, नेपालगंज, नैनपुर, नैनी, नैमिषारण्य, नौतनवाँ, नौरोजाबाद, नौरंजपुर, नौली, पंचमहल, पकरहट, पकरीगुरिया, पचीरा, पचैनाबाजार, पटना, पट्टीकल्याण, पण्डरिया, पण्डाडीह, पण्डोह, पथरिया, पद्मपुर, पनगरा, पन्ना, पयूयाँ, परजमकच्छ, परतेवा, परसदा, परसपुर, परसीपुर, पतौना, परसौनी, पल्सार, पलासा, पवारखेड़ा फार्म, पहलौनी, पाटन, पाड़ीव, पाण्डाकवा, पाण्डेग्राम, पाथर्डी, पायल, पालगंज, पालनपुर, पाली, पिंपलगाँव काले, पिपरतराई, पिपरावगाही, पिपरिया, पिपरौली, पिपलगाँवदेवी, पिपल्याजोधा, पिलानी, पीनना, पीपरी गहरवार, पीपलगाँवदेवी, पीपलरावा, पीपलवाड़ा, पीपलू, पीपाड़, पीलीबंगा, पीलीभीत, पुकारी, पुखरायाँ, पुड्डुकोट्टई, पुरहिया, पुरैनियाँ, पुलगाँव, पुलीयूर, पुवायाँ, पुष्कर, पुसौर, पूना, पूरेपहलवान, पूर्णिया, पेण्डरा, पेद्दपल्लि, पेसम, पैंची, पोचानेर, पौनी, प्रतापगढ़, प्रसन्ननगर, प्रह्लादनगर, प्रेमनगर, पृथ्वीपुर, फतेहगढ़, फतेहपुर, फतेहाबाद, फागी, फिरोजाबाद, फुलवरिया, फुलहर, फैजपुर, फैजाबाद, फ्रीगंज, बंगलोर, बक्सर, बकेवर, बखट, बखरी, बगासपुर, बगोदर, बच्छोआना, बटाला, बड़गाँव, बड़ागाई, बड़ागाँव, बड़ौत, बदायूँ, बनकट्टी, बनियापुर, बमकोई, बम्बई, बरदाला, बर्दवान, बरनपुर, बराँ, बराटा, बर्रा, बरारीपुरा, बरालोकपुर, बरुवारी, बरुंधन, बरेली, बरौनी, बरौली चौहान, बलिया, बसदेई, बसदेयाँ, बसन्त, बसौरा, बस्ती, बहरोड, बाँगरदा, बाँगीनोबाडी, बाँदा, बाँसगाँव, बागपिपरिया, बाढ़ापुर, बामौरकलाँ, बारडोली, बारसेन-बाजार, बारू, बाल्वाड़ा, बालापुर, बालांगीर, बालोन, बासन, बीक्कावोल, बिछवाँ, बिजालियाँ, बिरडी, बिलखी, बिलन्दा, बिलवा, बिलसरी, बिल्हा, बिस्वाबृज, बिहटा, बीकानेर, बीकापुर, बीकासर, बीछावाड़ी, बीड़, बीरमित्रपुर, बुधवाड़ा, बुधारा, बुरला, बुलन्दशहर, बून्दी, बेगमगंज, बेगुनपुर, बेड़वा, बेतूल, बेमेतरा, बेरड़ी, बेलगाम, बेलमण्डई, बेलाढुला, बेलाही, बेहटा, बैकुण्ठपुर, बैरसिया, बैंसरखेता, बोडला, बोड़ा, बोनगाइगाँव, बोनागंज, बोपली, बोरसर, बोल्कोट, बौहारी, ब्यावर, ब्रखरेडी, ब्रह्मावली, भगवानपुरा, भगोबन्दर, भच्छी, भटगामा, भट्टपुरा, भटेड़, भटोतरचकला, भण्डरिया,

भण्डारा, भतहर, भतपुरा, भदोहीं, भदोल्यायवनगर, भद्रा, भरकिया, भरतपुर, भरालमुख, भरोसा, भवदेवपुर, भवानी, भवानीपाटना, भागलपुर, भावनगर, भिलाईनगर, भीकनगाँव, भीडी, भीण्डर, भीर, भुण्डा, भुवन, भुवनेश्वर, भुसावल, भूसी, भेडवा, भेरुताला, भेवई, भैरौपुर, भैसड़गाँव, भोकरदन, भोकरहेड़ी, भोपाल, मोलाकोपा, मंगलाज, म्याना, मगरदर्रा, मगादरी, मच्छरगाँवाबाजार, मझौवाखजूरी, मट्टी, मण्डई, मणिपुर, मथानिया, मदनेश्वरस्थान, मद्रास, मधवापुर, मनासा, मनफरा, मनमाड़, मनौला, ममसई, मलणगाँव, मलहारा, मलाड़, मलावीं, मल्हारगढ़, मवड़ा, मस्की, मस्तीचक, मसाढ़ी, महनार, महम, महाराजपुर, मण्डल, महीदपुर, महूली, महोली, माडल, माण्डवीं, माटखेरी, माणिकपुर, माधोपाली, माधोपुर, मानपुर, मानपुरनगरिया, मायर, मालपुरा, मालेगाँव, मिर्जापुर, मुंगावली, मुंगेर, मुंगेली, मुंडेरा, मुकुन्दगढ़, मुजफ्फरपुर, मुडखेड, मुडियार, मुडीस, मुरादाबाद, मुरारा, मुरेना, मुल्ताई, मुहजना, मूण्डवा, मेघील, मेडिया, मेलेमपुड़ी, मेवाड़सिटी, मेहगाँव, मोटावासना, मोड़वाड़, मोड़ासा, मोतिहारी, मोरङ्गझापा, मोरवाड़ा, मोरवी, मोरावाँ, मौलागढ़, येवले, रंभापुर, रघूपाड़ा, रजपुरा, रजौधा, रठोदी, रतनगढ़, रतलाम, रनावा, रमणा, रमपुरा, रमै, ररा, रसगाँव, राँची, राजकोट, राजमपेट, राजमहल, राजाका ताजपुर, रानीखेत, रानीपुर, रानीबाग, रामचन्द्रपुरम्, रामछापरी, रामतीर्थ, रामनगर, रामपुर, रामसागर, रामेश्वरम्, रायगढ़, रायपुर, रायबरेली, रायसेन, रावतपुर, राहटी, राहे, रिवाड़ी, रीड, रीवाँ, रुनखेड़ा, रेडीमुदास, रेंड़, रोटा, रोनिया, रोहतक, रोहिणी, रोहिला, लखनऊ, लत्ता, लमगड़ा, लम्बरदर, लम्बीगली, लश्कर, लाखेरी, लाड़कुई, लातूर, लादीगढ़, लाम्बाछोटा, लालगढ़, लालदरवाजा, लालपुरसरोपड़ी, लावनी, लिलुआ, लीलापट्टी-वनकटिया, लुधियाना, लुनावडा, लुहरी, लेटवा, लोटाना, लोणावला, लोधनहार, लोहार्दी, लोहना, वढ़याचौक, वनकटिया, वनतोली, वम्हनी, वर्णपुर, वरियारपुर, वरुहटा, वरेंटा, वलैटा, वर्मौंझा, वरौलिया, वल्लभनगर, वहीन मदारमाँझा, वागपिपरिया, वाघानाला, वारंगल, वाराणसी, वालापुर, वासोदा, विक्रमपुर, विंचुर, विछिया, विजियानगरम्, विजियाना, विण्ठमगंज, विद्यापुरी, विद्यारण्यपुर, विराटनगर, विलखी, विशाखापट्टनम्, विष्णुपुरवृत्त, विछावाड़ी, विसलपुर, वीड़, वीड़ा, वीणाअन्दौली, वीरपाड़ा, वेगमगंज, वेल्लोर, वैकुण्ठपुर, वैद्यनाथधाम, वैसाडीह, वोड़ला, वृन्दावन, शकूरवस्ती, शमशेरनगर, शादीपुर, शामागुड़ी, शाहजहाँपुर, शाहवाजपुर, शिरी, शिलकोट, शिवली, शील, शेरगढ़, शेरपुर, शेलूबाजार, श्रीनगर, संगरुर, संगारेड्डी, स्वर्गाश्रम, सखिनेटिपल्ली, सठिआँव, सदरबाजार, सनावड़ा, सनावद, सम्बलपुर, समालखा, सरकण्डा, सरखों, सरगाँव, सरदारपुर, सरायमीर, सरिया, सर्री, सली, सलेम, सवैयामीर, ससगाँव, सस्तीगंज, सहदेई बुजुर्ग, सहमेऊ, सहारनपुर, साँगली, सागर, सागरदिघी, सागवाड़ा, सात्वार, सादुलपुर, सादुल्लाहपुर, सामाना, सायना, सारगढ़, सारन, सावरगाँव, सालासर, सासाराम, साहिबगंज, साहेबन, सिंघोला, सिंघेश्वरस्थान, सिकरिया, सिन्दगी, सिन्दरिया, सिमरौल, सिरकाली, सिरसा, सिरसिया, सिरसि, सिल्ली, सिवनी, सिसौना, सिहोर, सिहोरा, सींथल, सीका, सीगासीनी, सीतापुर, सीतामऊ, सीसवाली, सुवकी, सुसहरनियाँ, सुखासन, सुजानपुर, सुत्तामहम्मदपुर, सुन्दरपुर, सुन्दरसी, सुवाना, सुमरावाँ, सुल्तानगंज, सुलह, सुवेदारी, सूरजगढ़, सूरजपुर, सूलिया, सेजपुरिया, सेतगंगा, सेदम, सेमरोल, सेलू, सैदपुर, सैदपुरीऊवारी, सोनगाँव, सोमलवाड़ा, सौरा, हटा, हनुमानगढ़ फोर्ट, हफीजाबाद, हरचंदपुर, हरण्डोल, हरदा, हरदोई, हरपुरओस्ती, हरपुर बोचहा, हरलाखी, हरसेर, हरसोलव, हरियाड़, हरिहरपुर, हरिहाँस, हलदवानी, हलैना, हबीबपुर, हसन, हातनूर, हाथीदह, हापुड़, हाफलंग, हाफा, हिंगनघाट, हिण्डोरिया, हिण्डोलाजाइक, हिवरासेनावार, हिसार, हुजूराबाद, हुबली, हूहूलगाँव, हेसीपुर, होंगकांग, होशियारपुर, होशंगाबाद, होसपेट ।

—नाम-जप-विभाग, 'कल्याण', पो० गीतावाटिका (गोरखपुर)

पढ़ो, समझो और करो

(१)

आस्थाका बल

बीस सालकी उम्रमें, एक छोटी-सी घटनाके चलते, यद्यपि मेरी अनास्थाकी जड़ें कट गयीं, मुझे ईश्वरकी वत्सलताका अनुभव हुआ, उस वत्सलताका मैंने स्पर्श पाया, मुझे नवजीवन प्राप्त हुआ; लेकिन फिर भी अपना भला-बुरा मैं उन्हें सौंप नहीं सका, अपनेको सम्पूर्ण रूपसे उन्हें सौंप नहीं सका। अब सोचता हूँ तो लगता है, यह मेरी उम्रका दोष था। बीसकी उम्र बड़ी अल्हड़ उम्र होती है। तब अपनी शक्तिका ऐसा भरोसा होता है कि और किसी ताकतका भरोसा करनेका ध्यान ही नहीं आता। लेकिन जिंदगीकी राह हमेशा समतल-सपाट तो होती नहीं, जगह-जगह खंदक-गड्ढे मिलते ही रहते हैं, मुसीबतें आती ही रहती हैं। ऐसे समय आते हैं, जब बुद्धि कुण्ठित हो जाती है और रास्ता नहीं सूझता। पूर्वजन्मके पुण्यसे हो या पुरखोंके सुकृतसे, मेरी जिंदगीमें जब भी ऐसा समय आया, हमेशा कोई चमत्कार हुआ, अप्रत्याशित रूपसे कठिनाइयाँ दूर होती गयीं, मुसीबतें टलती गयीं, समस्याओंका समाधान होता गया। फिर एक ऐसा समय आया, जब मैं भलीभाँति समझ गया कि अपनी शक्तिका मेरा घमंड झूठा है। कोई एक महाशक्ति है, जो मुझे नियन्त्रित करती है और हर जरूरतके वक्त मेरी मुश्किल आसान कर देती है, जब कि मैं अपनी सारी ताकत, सारी बुद्धि और सारा श्रम लगाकर भी हार जाता और निराश हो जाता हूँ। स्वाभाविक था कि तब मैंने पूर्णतः उस महाशक्तिको आत्मसमर्पण कर दिया और हमेशाके लिये निश्चिन्त हो गया। मैंने कहा—'मैं तो अब छुट्टी लेता हूँ। तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। जो कहोगे, कर दूँगा; जैसे चलाओगे, चलता रहूँगा; जैसा रक्खोगे, रह लूँगा—'यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।'

और उसके बाद गुजरते-गुजरते बाईस साल गुजर गये। बीसका मैं, बयालीसका हो गया। उसी साल मेरे घर पहला पुत्र उत्पन्न हुआ। और ईश्वरकी इच्छा, उस समय बिना बुलाये मेरे लगभग सभी सगे-सम्बन्धी, किसी-न-किसी कारणसे मेरे घरपर उपस्थित थे। परिवार बड़ा न था, लेकिन जिम्मेदारियाँ बड़ी थीं। इसके अलावा, पैसोंसे मेरा जन्मजात बैर है। आय चाहे जितनी हो, पैसे मेरे पास टिक नहीं पाते। मेरा बैंक मेरा जेब ही रहा है हमेशा। सो, उस समय मेरी कुल पूँजी दस रुपयेकी थी और माँने, बड़ी-छोटी बहनोंने, दूसरे रिश्तेदारोंने भी मुझे तंग करना शुरू किया कि मुझे बड़ी उम्रमें पुत्र-प्राप्ति हुई है, मुझे उत्सव करना चाहिये, मित्र-बन्धुओंको दावत देनी चाहिये। पहले तो मैंने परिस्थितिका हवाला देकर उन्हें समझाना-बुझाना चाहा, किंतु सफल न हुआ तो दस रुपयेका टिकट लाकर, बुक पोस्टसे, तीन सौ मित्रोंको लड़केकी छट्ठीके अवसरपर भोजनके लिये निमन्त्रित कर दिया।

अपना काम करके मैं चुप बैठ रहा। अब पासमें फूटी कौड़ी भी न रही। कई दिन बाद तीन सौ निमन्त्रित व्यक्ति भोजन करने मेरे घर आयेंगे। परिवारमें हाहाकार मच गया। जिन लोगोंने जबर्दस्ती मुझे इस काममें प्रवृत्त किया था, वे ही मुझे भला-बुरा कहने लगे। इस बातके लिये मेरी आलोचना होने लगी कि रुपयोंका कोई प्रबन्ध करनेके बदले मैं निश्चिन्त होकर बैठा हूँ। मेरे सिवा चिन्ताके मारे सबका बुरा हाल था। लेकिन मैं ठीक जानता था कि 'समयपर सारा प्रबन्ध हो जायगा। प्रबन्ध किसी औरको करना है—चिन्ता मैं काहेकी करूँ?'

दो दिन गुजर गये। तीसरे दिनके चौबीस घंटे नहीं बीतने पाये थे कि एक हजार रुपये आ गये। ये रुपये चार किस्तोंमें आये, जिनमेंसे दोकी मुझे याद भी नहीं थी और दोका गुमान भी नहीं था। दोपहरकी डाकसे साढ़े तीन सौ रुपये एक पुस्तकविक्रेताके यहाँसे आये—बाईस साल पुराने हिसाबके रुपये। शामको एक मित्र आये, जो सात-आठ साल पहले, जरूरतके वक्त, दस-बीस करके जाने कितने रुपये ले गये थे। उन्होंने ढाई सौ रुपये सामने ला रक्खे। कहा—'बड़े बुरे वक्तमें आपने मदद की थी, अब मेरे पास है, ले लीजिये।' मैंने इन्कार किया तो रोनेपर उतर आये। रुपये मुझे लेने पड़े। दो घंटे बाद एक स्थानीय प्रकाशकने जबरदस्ती डेढ़ सौ रुपये मेरे मत्थे मढ़ दिये कि मैं उनकी पत्रिकाके लिये लेख लिखूँ। उस रातमें बड़ी शान्तिसे सोया। लेकिन मैं सोया हुआ ही था कि उषाकालमें किसी भले आदमीने दरवाजा खटखटाया। एक प्रकाशक थे। उन्हें टेक्स्ट बुक कमिटीमें कोई किताब दाखिल करनी थी। मुझसे उसकी भाषा सुधरवाना चाहते थे। ढाई सौ रुपये पेशगी दे गये; क्योंकि उन्हें बहुत जल्दी थी। दस दिनोंके अंदर पुस्तक छपाकर दाखिल कर देनी थी। लेकिन ये सज्जन रुपये देकर गये तो फिर महीनों गायब रहे। एक बार रास्तेमें मिले तो कहने लगे—'लेखकने पुस्तक ही लिखकर नहीं दी, मैं आकर क्या करता?'

जाहिर है, दावत बड़ी शानदार हुई। परिवारके विरोधके बावजूद मैंने सारे रुपये उसी दिन खर्च कर डाले। न करना मुझे अनुचित जान पड़ा; क्योंकि ये रुपये तो केवल

इसी कामके लिये आये थे, नहीं तो बाईस साल पुराना हिसाब और आठ साल पुराना पावना और मेरे दो-दो प्रकाशकोंके द्वारा जबरदस्ती दिये गये रुपये एक ही दिन क्यों आये ? बाईस साल पुराना हिसाब क्या दो महीना पहले नहीं आ सकता था ? और आठ साल पहले दिये गये रुपये क्या चार-छः महीने और नहीं रुक सकते थे ? और प्रकाशकोंको भी खास उसी दिन मेरे प्रति इतनी श्रद्धा-भक्ति क्यों उमड़ आनी थी ? इस योजनामें मुझे किसी महाशक्तिका हाथ स्पष्ट रूपसे दीख पड़ा था। वह हाथ बड़ा रक्षणशील है। हम उसे अपना दुःख सौंप दें—वह हमें शान्ति देगा। —प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'

(२)

ईश्वर कहाँ हैं ?

भगवान् श्रीरमण महर्षिके पास बैठे हुए तीन पादरी कह रहे थे—"भोले लोगोंको ठगनेके लिये रोज-रोज कहते हैं कि 'मुझे भगवान् मिलते हैं, मैं उनके साथ दो-तीन घंटे रहता हूँ।' तो कहाँ हैं वे आपके भगवान् ? बताइये।"

'यों वे ईश्वर कोई रास्तेमें नहीं बैठे हैं, जो आपको मिल जायँ। प्रसिद्धि पानेके लोभसे आप लोगोंको ठगकर कह रहे हैं कि मुझे प्रतिदिन भगवान् मिलते हैं।'—दूसरे पादरीने कहा।

'यदि यह बात सच हो तो हमें बताइये कि वे ईश्वर कहाँ हैं ? कैसे हैं ? आपको कैसे मिलते हैं ? नहीं तो हम आपकी पोल खोल देंगे।' तीसरे पादरीने कहा।

कमरपर लपेटे हुए एकमात्र कपड़ेके छोरको अङ्गपर फैलाते हुए निर्विकार रमण महर्षि इस क्रोधभरी वाणीको सुन रहे हैं, पर कुछ भी बोलते नहीं। मानो समुद्रका जल किनारेके साथ अकड़ाकर व्यर्थ ही वापस लौट जाता हो। पादरियोंने सोचा था कि 'रमण महर्षि अभी क्रोध करेंगे। अपनी बेइज्जतीभरे इन वचनोंको सुनकर कुछ उल्टा-सीधा बोल उठेंगे तो अपने झगड़ा करनेमें सुविधा हो जायगी।' पर शान्तिके महासागरके समान रमण महर्षि बोले—'आपको भगवान् बताऊँगा, आप कल सवेरे यहाँ आइये।'

पादरी उठकर चले गये और रमण महर्षि अपने काममें लग गये। दूसरे दिन प्रभातसे पहले ही तीनों पादरी रमण महर्षिके आश्रमपर आ खड़े हुए। रमण महर्षि भी स्नान-पूजन और नित्यकर्म पूरा करके नंगे बदन पादरियोंकी राह देख रहे थे। उन तीनोंके आकर खड़े होते ही बोले—'चलिये मेरे साथ, आपको भगवान् दिखाऊँ।'

रमण महर्षि आगे चले। पीछे तीनों पादरी चलने लगे। चलते-चलते लगभग तीन मीलका रास्ता समाप्त होनेपर एक जंगल आया। जंगलमें कुछ आगे जानेपर एक झोंपड़ी मिली। रमण महर्षि अंदर चले गये। पादरियोंने झोंपड़ीके अंदरकी ओर देखा तो उन्हें दो कोढ़ी पति-पत्नी दिखायी दिये और दुर्गन्धसे इन्होंने अपनी नाक दबा ली। इतनेमें रमण महर्षिने कहा—'आप जरा बाहर बैठिये।'

तीनों पादरी बैठकर, रमण महर्षि क्या करते हैं—यह देखने लगे। रमण भगवान् झोंपड़ीमें पड़े हुए कोढ़ी पति-पत्नीके पास बैठ गये। मीठी मोहनी मुसकानके साथ उन लोगोंके प्रति उन्होंने आश्वासनके वाक्य कहे। फिर अपने पासकी तेलकी शीशीमेंसे तेल लेकर बदबू मारते उस कोढ़ी पुरुषके शरीरपर अपने हाथसे तेल मालिश करने लगे। हाथ, पैर, कपाल, पेट, छाती, पेड़ू—सभी जगह तेल मालिश किया। तदनन्तर इसी प्रकार स्त्रीके शरीरपर भी तेल मालिश किया। तेल मालिशके बाद बाहर निकलकर खूब मलकर हाथ धोये। फिर, झोंपड़ीके आस-पास कुछ दूर तकसे चुन-चुनकर थोड़ा ईंधन इकट्ठा किया और उसे लाकर तीन पत्थरोंका चूल्हा बनाकर साथ लाये हुए साधनोंसे उसमें आग सुलगायी और उसपर गरम पानी रक्खा। फिर, उसमें साफ की हुई खिचड़ी डाल दी। खिचड़ी पक जानेपर उसे उतारकर रमण महर्षिने उन दोनों कोढ़ियोंको बैठाकर स्वयं उन्हें खिलाया। तदनन्तर जल पिलाकर दोनोंको बिछौनेपर सुला दिया।

इस सारे काममें रमण महर्षिको पूरे तीन घंटे लगे। इस सेवाको पूरी करनेके बाद कमरपर हाथ रखकर माधुर्य बरसाते हुए वे तीनों पादरियोंके सामने खड़े होकर मानो मूकभाषामें यह कहने लगे कि 'देखिये, ये मेरे भगवान् हैं और रोज मुझसे तीन घंटे मिलते हैं तथा मैं उनकी सेवा करता हूँ।'

पादरी यों समझदार तो थे ही, अतः इन सारी क्रियाओंसे निपटकर रमण महर्षि ज्यों ही खड़े हुए कि ये तीनों उनके चरणोंपर झुककर गद्गद हो गये। दूसरे दिन इन तीनों पादरियोंने सब जगह यह कहा कि 'कल हमने खुद ईसाके दर्शन किये।'

(अखण्ड आनन्द)—देवेन्द्रकुमार कालिदास पंडित

सम्मान्य एवं प्रेमी ग्राहकों तथा पाठकोंको सूचना और निवेदन

(१) यह 'कल्याण'के ४४वें वर्षका ग्यारहवाँ अङ्क है। बारहवाँ अङ्क निकल जानेपर यह वर्ष समाप्त हो जायगा। आगामी विशेषाङ्क 'अग्निपुराण, गर्गसंहिता और नरसिंहपुराणाङ्क' होगा। इस विशेषाङ्कमें 'अग्निपुराण और गर्गसंहिताका अवशेष अंश तथा नरसिंहपुराण' रहेगा। पुराने ग्राहक तो ग्रन्थोंकी पूर्तिके लिये इसको लेंगे ही, पर 'अग्निपुराण'के इस अंशमें पूर्वप्रकाशित विषयोंसे सर्वथा पृथक् अत्यन्त उपयोगी बहुत-से विषय, 'गर्गसंहिता'में पहले प्रकाशितसे बिल्कुल भिन्न नवीन अश्वमेध-खण्डकी अत्यन्त रोचक कथा, जिसमें भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर रासलीला आदिके सुन्दर प्रसङ्ग हैं एवं 'नरसिंहपुराण' तो कथाओंसे पूर्ण नवीन ग्रन्थ है ही, अतएव नये ग्राहक बननेवालोंके लिये भी यह एक बिल्कुल नयी, उपयोगी तथा मधुर वस्तु होगी। इस अङ्कसे सबको लाभ उठाना चाहिये।

(२) इस बार 'कल्याण'का वार्षिक मूल्य १०.०० (दस रुपये) कर दिया गया है, जो वास्तवमें लागतसे बहुत कम है। अतः आप वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे तुरंत भेजकर ग्राहक बन जाइये। मनीआर्डर-फार्म पिछले अङ्कके साथ भेजा जा चुका है। रुपये भेजते समय मनीआर्डरमें अपना नाम, पता, ग्राम या मुहल्ला, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि साफ-साफ अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें। ग्राहक-नंबर अवश्य लिखें। नये ग्राहक हों तो 'नया ग्राहक' लिखना न भूलें।

(३) ग्राहक-संख्या न लिखनेसे आपका शुभ नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है। इससे विशेषाङ्ककी एक प्रति नये नम्बरोंसे तथा एक प्रति पुराने नम्बरोंसे वी० पी० द्वारा भेजी जा सकती है। यह भी सम्भव है कि आप उधरसे रुपये कुछ देरसे भेजें और पहले ही यहांसे आपके नाम वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें आप कृपापूर्वक वी० पी० वापस न लौटाकर नये ग्राहक बना दें और उनका नाम-पता साफ-साफ लिखनेकी कृपा करें। सभी ग्राहक-पाठक महानुभावोंसे तथा पाठिका-ग्राहिका देवियोंसे यह भी निवेदन है कि वे प्रयत्न करके 'कल्याण'के दो-दो नये ग्राहक बनाकर उनके रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भिजवानेकी कृपा करें। इससे भगवान्‌की सेवा होगी।

(४) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर अवश्य सूचना दे दें, जिससे व्यर्थ 'कल्याण-कार्यालय'को हानि न सहनी पड़े।

(५) किसी कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो केवल 'विशेषाङ्क' और उसके बादके जितने अङ्क पहुँच जायँ, उन्हींमें पूरे वर्षका मूल्य समाप्त हुआ समझ लेना चाहिये; क्योंकि अकेले विशेषाङ्कका मूल्य १०.०० (दस रुपये) हैं।

(६) इस वर्ष भी सजिल्द 'अङ्क' देनेमें कठिनता है और बहुत विलम्बसे दिये जानेकी सम्भावना है। यों सजिल्दका मूल्य ११.५० है।

(७) इस 'अङ्क'में लेख प्रायः नहीं रहेंगे। अतएव लेखक महानुभाव कृपया इसके लिये लेख न भेजें।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

क्षणभङ्गुर जीवनको भगवत्सेवामें लगाइये

मनुष्य-जीवन क्षणभङ्गुर है। मोहवश मनुष्य राग-द्वेषके कारण जीवनमें व्यर्थ-अनर्थ कार्य करता रहता है। पर पता नहीं, किस क्षण इस जीवनका अन्त आ जाय। अभी पूर्वी पाकिस्तानमें भीषण खण्ड-प्रलय हो गया। लाखों मनुष्य तथा दूसरे प्राणी अकस्मात् मर गये। बहुत बड़ी दुःखजनक दुर्घटना हुई; इसमें बचे हुए पीड़ित भाई-बहिनोंकी मानवमात्रको यथासाध्य यथायोग्य सेवा-सहायता करनी चाहिये। परंतु सबको याद रखना चाहिये—हमारी भी किसी क्षण मृत्यु हो सकती है। अतएव व्यर्थ-अनर्थके कामोंमें जीवनका दुरुपयोग न करके इसे भगवत्सेवामें लगाना चाहिये।

विनीत निवेदन

भाई श्रीहनुमानप्रसादजीका शरीर इधर कुछ दिनोंसे विशेष अस्वस्थ है। शरीरमें काफी कमजोरी है। अतएव पत्र लिखने-लिखानेमें, अधिक बातचीत करनेमें तथा विशेष कार्य करनेमें वे सर्वथा असमर्थ-से हो रहे हैं, इसलिये उनके नाम व्यक्तिगत पत्र कृपया नहीं लिखें। सम्पादन-सम्बन्धी पत्र सम्पादकके या मेरे नामसे त.. व्यवस्था-सम्बन्धी पत्र 'व्यवस्थापक 'कल्याण', पो० गीताप्रेस, गोरखपुर'के पतेपर लिखना चाहिये। उनके नाम पहलेके आये हुए बहुत पत्र रक्खे हैं, पर उनका उत्तर लिखनेमें वे असमर्थ हैं। इसके लिये वे क्षमा चाहते हैं।

—चिम्मनलाल गोस्वामी, सम्पादक 'कल्याण',
पो० गीतावाटिका, गोरखपुर (उ० प्र०)

'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकोंसे निवेदन

(१) विशेषाङ्क छप रहा है; परंतु इस बार कई कारणोंसे, खासकर श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी अस्वस्थताके कारण छपाईका काम बहुत देरसे आरम्भ हो सका है तथा चित्र-निर्माणादिमें भी विलम्ब हो रहा है, इसलिये बहुत प्रयत्न करनेपर भी 'विशेषाङ्क'के प्रकाशनमें कुछ विशेष देर होना अनिवार्य है। 'कल्याण'के प्रेमी ग्राहक महोदय स्थिति समझकर कृपया क्षमा करेंगे।

(२) गीताप्रेस पुस्तक-विभाग तथा 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी) का विभाग 'कल्याण'-विभागसे अलग है। अतएव 'कल्याण'के मूल्यके साथ पुस्तकोंके लिये तथा 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी) के लिये रुपये न भेजें। उनके लिये अलग रुपये भेजें। चेक या ड्राफ्ट तो 'गीताप्रेस'के नामसे भेजने चाहिये। गोरखपुरके बाहरके चेकोंमें १.०० रुपया बैंकचार्ज जोड़कर भेजना चाहिये। पुस्तकोंके आर्डर तथा रुपये 'व्यवस्थापक, गीताप्रेस'के नामसे तथा 'कल्याण-कल्पतरु'के रुपये 'व्यवस्थापक, कल्याण-कल्पतरु'के नामसे भेजने चाहिये।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)